गुरु भूखा हो तो न खावे, प्यासा हो तो न पीवे, खड़े हुए गुरु के न बैठे, गुरु के न सोते हुए न सोवे, दाएँ से दायाँ बाएँ से बायाँ हाथ उठाकर गुरु के पैर छुए, गुरु को प्रणाम कर पढ़ाने की प्रार्थना करे।

अन्यथा चेष्टा न करनी चाहिए–

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो मुनिः।
न च वागङ्गचपल इति शिष्टस्य गोचरः॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 45।18)

हाथ, पाँव से चपल न हो, न नेत्र चपल हों। न वाणी और अंगों से चपल हो यह शिष्ट का लक्षण है।

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी यो नरः।
नित्योच्छिष्टः संकुशुको नेहायुर्विन्दते महत्॥13॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 205। 13)

मिट्टी के ढेले को फोड़ने वाला, तिनका तोड़ने वाला, नाखून खानेवाला जो मनुष्य है तथा झूठे मुखवाला, स्थिर आयु प्राप्त नहीं करता है।

वृद्धों के प्रति वाग्व्यवहार शिष्टाचार–

त्वङ्कारं नामधेयं च ज्येष्ठानां परिवर्जयेत्।
अवराणां समानानामुभयेषां न दुष्यति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 205।25)

बड़ों के प्रति तू कहकर और उनका नाम लेकर बोलना छोड़ देना चाहिए तथा छोटों और समान जनों के प्रति बोलना तो दोष नहीं है।

न जल्पन्ति च भुञ्जाना न निद्रान्त्यार्द्रपाणयः॥36॥
वृद्धान्नाभिभवेज्जातु न चैतान् प्रेषयेदिति।
नासीनः स्यात् स्थितेष्वेवमायुरस्य न रिष्यते॥46॥
न नग्नामीक्षेत नारीं न नग्नान् पुरुषानपि॥47॥

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

न जातु त्वमिति ब्रूयादापन्नोऽपि महत्तरम्।
त्वङ्कारो वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते॥53॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 162)

न खाते हुए बहुत बोले, गीले हाथ न सोना चाहिये, न कभी वृद्धों को दबावे, न इन्हें कहीं नौकर की भाँति भेजे। न बड़ों के खड़े हुए बैठे, क्योंकि इस प्रकार करने से आयु नष्ट होती है। नंगी स्त्री को न देखे, न नंगे पुरुषों को देखे और न कभी विपत्ति में बड़ों को तू कहकर बोले, तू कहने या मारने में विद्वान् भेद नहीं मानते।

उचित व्यवहार–

निर्बुद्धि दुर्बुद्धि सुबुद्धि जन के प्रति–

यस्य बुद्धिः परिभवेत् तमतीनेन सान्त्वयेत।
अनागतेन दुर्बुद्धिं प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम्॥

(महा०, आदिप० सम्भव० अ० 140।74)

जिस मनुष्य की बुद्धि दब गई या मर गई, नष्ट हो गई हो, उसे पिछले अच्छे वृत्तान्त सुनाकर सान्त्वना देनी चाहिए, विपरीत बुद्धिवाले जन को भविष्य की सिद्धि आशा बतलाकर और बुद्धिमान् जन को वर्तमान की बात सुना कर मार्ग पर लावे।

हितकर कटुभाषी दुर्लभ है–

लभते खलु पापीयान्नरो नु प्रियवागिह।
अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

(महा०, सभाप० द्यूतप० अ० 64।16)

मीठा बोलने वाला अहितकारी जन मिल सकता है परन्तु कटु हितवचन का बोलने वाला और सुनने वाला दुर्लभ है।

किन से विवाद न करे–

ऋत्विक् पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।
वृद्धबालातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः॥

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 243। 14,15)

ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बाल, पण्डित, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी बान्धवजनों, माता, पिता, बहिन, भ्राता, पुत्र, स्वस्त्री, पुत्री, और सेवक से विवाद न करे।

यथायोग्य व्यवहार–

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया बाधितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 109।30)

जिस सम्बन्ध में जो मनुष्य जैसा वर्ताव करता है, उस सम्बन्ध में वैसा ही वह मनुष्य व्यवहार करे। नीतिवाले छली को नीति से, छल से बाधित करना चाहिए, सज्जन को सज्जनता से सेवन करे।

विश्वास की मर्यादा–

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नाति विश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति॥

(महा०, शान्तिप० आपद्ध० अ० 139।29)

अविश्वस्त मनुष्य में विश्वास न करे, विश्वस्त में अति विश्वास न करे, विश्वास से भय–संकट सामने आकर जड़ काट देता है।

अपने समान सुख–दुःख समझ दूसरे से व्यवहार–

जीवितं यः स्वयं चेच्छेत् कथं सोऽन्यं प्रघातयेत्।
यद् यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापिचिन्तयेत्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 259।22)

जो मनुष्य स्वयं जीना चाहता है वह कैसे दूसरे को

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

मारता है। जो–जो अपने लिए चाहता है, उसे उसको दूसरे के लिए भी सोचना चाहिए।

जिस सम्बन्ध में दूसरे की निन्दा करे, उस विषय में अपने को उससे दूर रखे–

परेषां यदसूयेत न तत्कुर्यात् स्वयं नरः।
यो ह्यसूयुस्तथायुक्तः सोऽवहासं नियच्छति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 290।24)

अन्य की जिस विषय में निन्दा करे उसे स्वयं मनुष्य न सेवन करे जो निन्दा करने वाला उस दोष से युक्त हो वह खिल्ली को प्राप्त होता है।

उपचार व्यवहार–

सुख व्यवहार–

अध्वक्लान्तस्य शयनं स्थानक्लान्तस्य चासनम्।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम्॥
ईप्सितस्येव सम्प्राप्तिरन्नस्य समयेऽतिथेः।
एषितस्यात्मनः काले वृद्धस्येव सुतो यथा॥
मनसा चिन्तितस्येव प्रीतिः स्निग्धस्य दर्शनं प्रह्लादयति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 356। 2-4)

यात्रा से थके हुए को सो जाना, स्थानाभाव से थके हुए को स्थान मिल जाना, प्यासे को जल, भूखे को भोजन, अभीष्ट प्राप्तव्य की प्राप्ति या अन्न की भाँति समय पर अतिथि की प्राप्ति, खोजने योग्य की समय पर प्राप्ति, वृद्ध जन को जैसे पुत्र की प्राप्ति, मन से सोचे हुए की प्राप्ति और स्नेह युक्त का दर्शन प्रसन्न करता है।

मनुष्य स्वयं बन्धु और शत्रु है–

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

(महा०, अनुशासनप० अ० 6।27)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 243। 14,15)

ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बाल, पण्डित, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी बान्धवजनों, माता, पिता, बहिन, भ्राता, पुत्र, स्वस्त्री, पुत्री, और सेवक से विवाद न करे।

यथायोग्य व्यवहार–

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया बाधितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 109।30)

जिस सम्बन्ध में जो मनुष्य जैसा वर्ताव करता है, उस सम्बन्ध में वैसा ही वह मनुष्य व्यवहार करे। नीतिवाले छली को नीति से, छल से बाधित करना चाहिए, सज्जन को सज्जनता से सेवन करे।

विश्वास की मर्यादा–

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नाति विश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति॥

(महा०, शान्तिप० आपद्ध० अ० 139।29)

अविश्वस्त मनुष्य में विश्वास न करे, विश्वस्त में अति विश्वास न करे, विश्वास से भय-संकट सामने आकर जड़ काट देता है।

अपने समान सुख-दुःख समझ दूसरे से व्यवहार–

जीवितं यः स्वयं चेच्छेत् कथं सोऽन्यं प्रघातयेत्।
यद् यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापिचिन्तयेत्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 259।22)

जो मनुष्य स्वयं जीना चाहता है वह कैसे दूसरे को

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

मारता है। जो–जो अपने लिए चाहता है, उसे उसको दूसरे के लिए भी सोचना चाहिए।

जिस सम्बन्ध में दूसरे की निन्दा करे, उस विषय में अपने को उससे दूर रखे–

परेषां यदसूयेत न तत्कुर्यात् स्वयं नरः।
यो ह्यसूयुस्तथायुक्तः सोऽवहासं नियच्छति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 290।24)

अन्य की जिस विषय में निन्दा करे उसे स्वयं मनुष्य न सेवन करे जो निन्दा करने वाला उस दोष से युक्त हो वह खिल्ली को प्राप्त होता है।

उपचार व्यवहार–

सुख व्यवहार–

अध्वक्लान्तस्य शयनं स्थानक्लान्तस्य चासनम्।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम्॥
ईप्सितस्येव सम्प्राप्तिरन्नस्य समयेऽतिथेः।
एषितस्यात्मनः काले वृद्धस्येव सुतो यथा॥
मनसा चिन्तितस्येव प्रीतिः स्निग्धस्य दर्शनं प्रह्लादयति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 356। 2-4)

यात्रा से थके हुए को सो जाना, स्थानाभाव से थके हुए को स्थान मिल जाना, प्यासे को जल, भूखे को भोजन, अभीष्ट प्राप्तव्य की प्राप्ति या अन्न की भाँति समय पर अतिथि की प्राप्ति, खोजने योग्य की समय पर प्राप्ति, वृद्ध जन को जैसे पुत्र की प्राप्ति, मन से सोचे हुए की प्राप्ति और स्नेह युक्त का दर्शन प्रसन्न करता है।

मनुष्य स्वयं बन्धु और शत्रु है–

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

(महा०, अनुशासनप० अ० 6।27)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

मनुष्य का स्वयं ही अपना आपा बन्धु है और अपना आपा ही शत्रु है।

आन्तरिक जीवन में सेवनीय तीर्थ–

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम्॥3॥
तीर्थं शौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम्।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः॥4॥
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते॥5॥
तत्त्ववित्त्वनहम्बुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते॥6॥
सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः समदर्शिनः।
शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ये॥8॥
नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥9॥
अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तष्वर्थेषु निर्ममाः।
शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा॥10॥
मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनः॥13॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 108)

अगाध, विमल, शुद्ध, सत्यरूप, जलवाले धैर्यमय जलाशयरूप मानस तीर्थ में आत्मा को लेकर सदा स्नान करना चाहिए। शौच, अयाचना, ऋजुता, सत्य, मृदुता, सब प्राणियों में अहिंसा, दयाभाव, इन्द्रियदमन और शमन तीर्थ है। ममत्वरहित, अहङ्काररहित, द्वन्द्वरहित, परिग्रहरहित, पवित्र भिक्षाचारी जन तीर्थरूप हैं। तत्त्ववेत्ता अहङ्काररहित जन्म उत्तम तीर्थ हैं। सभी त्यागों में तत्पर समझदार समदर्शी शौच से पवित्र व्यवहार वाले तीर्थ कहलाते हैं। दया से आर्द्र गात्र

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

वाले जन को स्नान किया हुआ ही कहना चाहिए, जिसने दमन से स्नान किया है वह बाहर भीतर से पवित्र है वही स्नान किये हुए है। गए हुओं में इच्छा न रखने वाला, प्राप्त हुओं में ममत्व-रहित जिन के अन्दर स्पृहा न उत्पन्न हो उनका ही शौच उत्तम है। जो मन से प्रकाशमान ज्ञान जल से मानस तीर्थ में स्नान करता है उसका ही स्नान यथार्थ है।

भक्त का त्याग श्रेष्ठ नहीं–

अनार्यमार्येण सहस्त्रनेत्र! शक्यं कर्तुं दुष्करमेतदार्य।
मा मे श्रिया सङ्गमनं तयाऽस्तु यस्याः कुले भक्तजनं त्यजेयम्॥9॥
भीतिप्रदानं शरणागतस्य स्त्रियः वधो ब्राह्मणस्वापहारः।
मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शब्दं भक्त त्यागश्चैव समो मही मे॥16॥

(महा०, प्रजानिक० अ०)

स्वर्ग में जाते समय इन्द्र ने युधिष्ठिर को कुत्ता साथ न ले जाने का आदेश दिया किन्तु युधिष्ठिर ने कहा कि भक्त का त्याग, अनार्य, कर्म, मुझ आर्य से होना दुष्कर हैं भले ही उस लक्ष्मी से सङ्गति न हो जिसके कारण भक्त को छोड़ना पड़े। क्योंकि शरणागत को भय देना, स्त्री का वध करना, ब्राह्मण का धन हरना, मित्रद्रोह करना, ये चारों बुरे काम भक्त के त्याग के बराबर हैं।

भृत्यों के प्रति व्यवहार–

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं सञ्जिघृक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः॥

(महा०, उद्योगप० प्रजा० अ० 37।23)

भृत्यों-नौकरों की आजीविका को रोककर राज्य कोश में अधिक धन संग्रह न करे, ऐसे संग्रहकर्त्ता शासक को उससे वञ्चित हुए, स्नेह रखने वाले मन्त्री भी भोगों से रहित

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

होकर, विरोधी होकर त्याग देते हैं।

नमस्ते का व्यवहार–

एवमस्तु नमस्तेऽस्तु पुत्रस्नेहात्प्रशाधि माम्।
स्नुषया पूज्यमाना वै देवि वत्स्यसि नित्यदा॥

(महा०, वनप० मार्कण्डेय० अ० 230।13)

अच्छा नमस्ते तो पुत्र स्नेह से मुझे आदेश करें, स्नुषा (पुत्रवधू) से पूजी जाती हुई देवी नित्य साथ रहेंगी।

कुरु कार्याणि धर्म्याणि नमस्ते पुरुषर्षभ!।

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 10।50)

धर्म सम्बन्धी कार्य कर हे पुरुषर्षभ युधिष्ठिर! नमस्ते हो।

प्रसिद्धियाँ–

जरा आदि रूप आदि को नष्ट कर देते हैं–

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः॥

(महा०, उद्योगप० प्रजा० अ० 35।50)

जरा (बुढ़ापा) रूप-सौन्दर्य को नष्ट कर देता है आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, निन्दा धर्माचरण को नष्ट कर देती है। क्रोध शोभा को, अनार्य सेवा शील को, कामवेग लज्जा को और अभिमान सब गुणग्राम को नष्ट कर देता है।

श्रेष्ठ के पीछे अन्य जन चलते हैं–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(महा०, भीष्म० भगवद्गीता अ० 27 (3) 20)

जिस-जिस कार्य का श्रेष्ठजन आचरण करता है उस उसको साधारण जन सेवन करता है। श्रेष्ठ जन जिसे प्रमाण मानता है, संसार उसके पीछे चलता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

यथा—

ताली बजाकर प्रसन्नता प्रकट करना—

उन्मत्तमिव मातङ्गं तालशब्दैर्नराधिपाः॥
भूयः सहर्षमाचक्रुर्यो धनमर्षणम्॥

(महा०, शल्यप० गदाप० अ० 56/44)

गदायुद्ध में उन्मत्त हाथी जैसे असह्य दुर्योधन को देख राजा लोगों ने तालियों के शब्दों से बहुत हर्ष प्रकट किया।

वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें

वैदिक पुस्तकालय
॥यजुर्वेद॥
॥सामवेद॥
॥अथर्ववेद॥

वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें

वैदिक पुस्तकालय
॥यजुर्वेद॥
॥सामवेद॥
॥अथर्ववेद॥

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

अष्टम पार्श्व

ईश्वर-जीव-प्रकृति-संस्थान

ईश्वर का स्वरूप–

तत्र यः परमात्मा हि सः नित्यं निर्गुणः स्मृतः।
स हि नारायणो ज्ञेयः सर्वात्मना पुरुषो हि सः॥
न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवाम्भसा।
कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबन्धैः स युज्यते॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 351। 14, 15)

परमात्मा नित्य निर्गुण है वह नारायण सर्वात्मा पुरुष कहलाता है। वह कर्मफलों से सम्पर्क नहीं रखता है जैसे कमल पत्र जल के सम्पर्क से रहित रहता है। अन्य जीव कर्म परायण है जो मोक्ष और बन्धों से युक्त होता है।

ईश्वर का हृदय में साक्षात्कार–

हृदयं सर्वभूतानां पर्वणाङ्गुष्ठमात्रकः।
अथ ग्रसत्यनन्तो हि महात्मा विश्वमीश्वरः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 312।15)

सब प्राणियों के हृदय में अंङ्गुष्ठ पर्वमात्र ईश्वर दृष्ट होता है वह ईश्वर अनन्त है जो विश्व को अपने अन्दर ग्रहण करता है।

सांख्यसिद्धान्त में ईश्वर स्वीकार–

अत्र ते संशयो मा भूज्ज्ञानं साख्यं परं मतम्।
अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥101॥
अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वं कर्तृशाश्वतम्।
कूटस्थं चैव नित्यं च यद् वदन्ति मनीषिणः॥102।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

सांख्यं विशालं परमं पुराणं महार्णवं विमलमुदारकान्तम्।
कृत्स्नं सांख्यं नृपते महात्मा नारायणी धारयतेऽप्रमेयम्॥114॥
एतन्मयोक्तं नरदेव तत्त्वं नारायणो विश्वमिदं पुराणम्।
स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले च तदत्ति भूयः॥115॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 301)

भीष्म पितामह युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं कि हे युधिष्ठिर! इस विषय में तेरे अन्दर संशय न रहे, सांख्य ज्ञान ऊँचा माना गया है। अक्षर 'ओ३म्' अथवा अविनाशी ब्रह्म ध्रुव पूर्ण सनातन है, आदि व मध्य रहित है, निर्द्वन्द्व, शाश्वत कर्ता है, स्थिर नित्य जिसे मनीषी कहते हैं, सांख्य विशाल, महान् पुरातन, महासमुद्र रूप विशाल विस्तृत और प्रकाशमान है, उस ऐसे समस्त सांख्य को नारायण धारण करता है। मैंने जो तत्त्व नारायण कहा है यह इस विश्व को सर्गकाल में रचता है और संहार काल में अपने अन्दर संहार करता है।

तथा—

निःसङ्गात्मानमासाद्य षड्विंशकमजं विभुम्।
विभुस्त्यजति चाव्यक्तं यदा त्वेतद् विबुध्यते॥20॥
विशुद्धधर्मा शुद्धेन बुद्धेन च स बुद्धिमान्।
विमुक्तधर्मा मुक्तेन समेत्य पुरुषर्षभ!॥27॥
विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना॥29॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 308)

निःसङ्गात्मा छब्बीसवें पदार्थ अजन्मा विभु ईश्वर को प्राप्त होकर जीव अव्यक्त प्रकृति को छोड़ देता है, जब इसे समझ लेता है। बुद्धिमान् जीव शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, विमलरूप परमात्मा से समागम करके विशुद्ध धर्मी, विमुक्तधर्मी और विमल रूप हो जाता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

ईश्वर का अवतार नहीं, अवतार खण्डन–
श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के चरण धोए–

ततोऽभिवाद्य गोविन्दः पादौ जग्राह धर्मवित्।
उत्थाप्य धर्मराजस्तु मूर्ध्न्युपाघ्राय केशवम्॥
पाण्डवो यादवश्रेष्ठं कृष्णं कमललोचनम्।
गम्यतामित्यनुज्ञाप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः॥

(महा०, सभाप० सभापर्व० अ० 2।23, 24)

तब धर्मवेत्ता कृष्ण ने युधिष्ठिर के पाँव पकड़े, चरण-वन्दन किया। युधिष्ठिर ने कृष्ण को उठाकर मूर्धा को सूँघ कर जाने की अनुमति दी।

कृष्ण ईश्वर का अवतार हों और युधिष्ठिर के चरण छुएँ तथा युधिष्ठिर उनसे चरण छुआएँ यह विपरीत है।

कृष्ण को ऋषि कहा है–

तावन्योऽन्यं समाश्लिष्य पृष्ट्वा च कुशलं वने।
आस्तां प्रियसखायौ तौ नरनारायणावृषी॥

(महा०, वनपर्व अ० 219।5)

उन दोनों ने अन्योऽन्य परस्पर वन में आलिङ्गन कर और कुशल पूछकर दोनों प्रिय मित्र नर, नारायण ऋषि बैठ गए।

यहाँ अर्जुन और कृष्ण को ऋषि कहा है। ईश्वर का अवतार नहीं। मनुष्यों में ऊँचा विद्वान् ऋषि कहलाता है।

कृष्ण का नारायण नाम वंशज है ईश्वर के अवतार के कारण नहीं–

मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत्।
नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः॥

(महा०, उद्योगप० प्रजा० अ० 7। 18, 24)

मेरे जैसे प्रहार करने वाले सहस्रों गोप (ग्वाले, यादव) जो नारायण कहलाते हैं सब संग्राम में लड़नेवाले हैं।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

यहाँ कृष्णजी के वंशजों को नारायण कहा है अतः कृष्णजी का भी नारायण कहा जाना वंशज दृष्टि से है ईश्वर का अवतार होने के कारण नहीं, एवं वे ईश्वर का अवतार न थे।

कृष्ण द्वारा पुण्य की इच्छा करना–

अहापयन् पाण्डवार्थं यथावच्छमं कुरूणां यदि चाचरेयम्।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महात्मन्॥

(महा०, भगवद्यामप० अ० 84।19)

पाण्डवों के अभीष्ट एवं हित को न छोड़ते हुए कुरुवंशजों की यथावत् शान्ति का मैं यदि आचरण करूँ तो मेरे लिए पुण्य हो।

इस प्रकार कृष्ण द्वारा पुण्य की चाहना करने से, कृष्ण पुण्य पाप कर्म में आने से ईश्वर का अवतार नहीं थे, मनुष्य थे।

कृष्ण का बारंबार जन्म होना–

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप!॥

(महा०, भीष्मप० [भगवद्गीता] अ० 27।20)

हे अर्जुन मेरे और तेरे बहुत जन्म हुए हैं मैं तो अपने सब जन्मों को जानता हूँ, तू नहीं जानता है।

अर्जुन की भाँति कृष्ण का पुनः-पुनः जन्मना उसे ईश्वर नहीं अपितु जीव सिद्ध करते हैं।

कृष्ण ने ब्रह्म का ध्यान किया–

ततः शयनमाविश्य प्रसुप्तो मधुसूदनः।
याममात्रार्धशेषायां यामिन्यां प्रत्यबुध्यत॥
सध्यानपथमाविश्य सर्वज्ञानानि माधवः।
अवलोक्य ततः पश्चाद्दध्यौ ब्रह्मसनातनम्॥

(महा०, शान्तिप० राजध० अ० 53।1-2)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कृष्णजी बिस्तर पर सो गये, आधा प्रहर रात्रि रहने पर जागे। पुनः सब ज्ञान और ध्यान के मार्ग-साधन खोले, आसन जमाकर सनातन ब्रह्म का ध्यान किया।

कृष्ण द्वारा ब्रह्म का ध्यान विधिपूर्वक करने से कृष्णजी ब्रह्म नहीं थे, ऐसा सिद्ध होता है।

कृष्ण ने ईश्वर की स्तुति की–

युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः।
भक्त्या परमया चैव प्रीतश्चैव महात्मनः॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 14।13)

कृष्ण के मुख से ईश्वर गुण वर्णन–

तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चिद् भगवतो गुणान्।
भवतां कीर्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम्॥24॥
यदवाप्तं च मे पूर्वं साम्बहेतोः सुदुष्करम्।
यथावद् भगवान् दृष्टो मया पूर्वं समाधिना॥27॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 14)

कृष्णजी कहते हैं कि मैं उस दुष्ट नाशक व्रतेश भगवान् के गुण आपको सुनाता हूँ जिस ब्रह्म को मैंने प्राप्त किया है और भगवान् को समाधि से देखा है।

कृष्ण द्वारा ईश्वर की स्तुति, गुण वर्णन किया जाना एवं समाधि से साक्षात् किया जाना, इससे कृष्णजी ईश्वर नहीं थे, ईश्वर का अवतार नहीं थे यह सिद्ध होता है।

उपमन्यु से विधि सीखकर कृष्ण ने ईश्वर की उपासना की–

एवं दृष्टो मया कृष्ण देवदेवः समाधिना।
अपि तावमथाप्येवं दद्यात्स भगवाञ्छिवः॥

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

दर्शनं मुनिशार्दूल प्रसादं चापि शङ्करः॥370॥
षष्ठे मासि महादेवं द्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम्॥372॥
(महा०, अनुशासनप० अ० 14)

कृष्णजी से उपमन्यु ने कहा—हे कृष्ण! इस प्रकार मैंने समाधि द्वारा परमदेव परमात्मा का साक्षात् किया। यह सुन कृष्णजी बोले कि हे मुनि! मुझे भी वह शिव-शङ्कर भगवान् दर्शन और प्रसाद प्रदान करें। इस पर उपमन्यु ने कहा—"हे कृष्ण! छठे मास में महादेव के दर्शन करोगे।"

इस प्रकार उपमन्यु से ईश्वर की उपासना विधि सीखकर परमेश्वर के दर्शन की कृष्णजी द्वारा इच्छा करने और दर्शन करने की चर्चा से कृष्ण ईश्वर या ईश्वर का अवतार नहीं थे। ***कृष्ण ने उपमन्यु से किस प्रकार परमेश्वर दर्शन की विधि सीखी—***

दिनेऽष्टमे तु विप्रेण दीक्षितोऽहं यथाविधि।
दण्डी मुण्डी कुशी चीरी घृताक्तो मेखलीकृतः॥
मासमेकं फलाहारो द्वितीये सलिलाशनः।
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं चानिलाशनः।
एकपादेन च तिष्ठंश्च च ऊर्ध्वबाहुरतन्द्रित॥
तेजःसूर्यसहस्रस्य अपश्यं दिवि भारत।
ईक्षितुं च महादेवं न मे शक्तिरभूत् तदा॥
(महा०, अनुशासनप० अ० 14। 380-32, 40)

हे युधिष्ठिर! उपमन्यु ने आठवें दिन यथाविधि दीक्षित किया मुझे दण्डी, मुण्डी, कुशासनवाला, चीरवाला, चौलवाला घृत से चिकना मेखलावाला, पुनः एक मास फलाहारी, दूसरे मास जलाहारी, तृतीय, चतुर्थ, पाँचवें मास पवनाहारी बना एक पैर से खड़े हुए, ऊपर भुजाएँ किए हुए आलस्यरहित हो, सहस्र सूर्यों के तेजवाले महादेव को देखने में मेरी शक्ति

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

उस समय न हो सकी।

इस प्रकार कृष्ण द्वारा तपस्या और परमेश्वर दर्शन होने से कृष्णजी स्वयं ईश्वर या ईश्वर का अवतार नहीं थे।

कृष्ण ने महेश्वर से (अयुक्त) वर माँगा—

मूर्ध्ना निपत्य नियतस्तेजः सन्नियमे ततः।
परमं हर्षमागत्य भगवन्तमथाब्रुवम्॥1॥
धर्मे दृढत्वं युधि शत्रुघातं यशस्तथाग्र्यं परमं बलं च।
योगप्रियत्वं तव सन्निकर्षं वृणे सुतानां च शतं शतानि॥2॥
भार्यासहस्राणि च षोडशैव तासु प्रियत्वं च तथाऽक्षमं च॥7॥
प्रीतिं चाग्र्यां बान्धवानां सकाशाद् ददामि तेऽहं वपुषः काम्यतां च॥8॥ (महा०, अनुशासनप० अ० 15)

कृष्णजी ने महेश्वर के आगे अपने को समर्पित कर सँभल कर तेज को सहन किया। परमहर्ष को प्राप्त हो भगवान् महेश्वर को बोले। मेरे लिए वह धर्म में दृढ़ता, युद्ध में शत्रु का हनन, उत्तम यश, परम बल, योग में प्रीति, तेरी समीपता, दश सहस्र पुत्र माँगता हूँ, तथा सोलह सहस्र पत्नियाँ, उन में प्रीति, बन्धवों से उत्तम प्रीति शरीर की कमनीयता ये सब तेरे लिए देता हूँ।

इस प्रकार कृष्ण द्वारा वर याचना से कृष्णजी ईश्वर या ईश्वर का अवतार नहीं हो सकते। इस पर भी अयुक्त विरोधी वर याचना।

कृष्णजी का स्वर्ग में जाना और अपनी 56 सहस्र स्त्रियों द्वारा सेवा कराना—

षोडशस्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरीवृताः।
ताश्चैवोप्सरसो भूत्वा वासुदेवमुपाविशन्॥
(महा०, स्वर्गारोहणप० अ० 5। 25, 26)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

स्वर्ग में कृष्णजी की 16 सहस्र स्त्रियाँ अप्सराएँ बनकर कृष्णजी को प्राप्त हुईं।

इस स्वर्ग में कृष्णजी का जाना और अपनी 16 सहस्र स्त्रियों को प्राप्त करना, कृष्णजी को ईश्वर या ईश्वर का अवतार लेना सिद्ध नहीं करता।

राम यौगिक ढंग से ईश्वर या योग में आश्रयणीय देव का वाचक नहीं—

वृद्धाभिश्चापि रामाभिः परिचारार्थमावृतम्।

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 68।6)

वृद्ध रामाओं—रमणभोग की साधनभूत स्त्रियों से सेवार्थ घिरे हुए थे।

यहाँ भोगविलास की साधनभूत स्त्री को रामा कहने से रामा का अर्थ भोगविलास के साधनभूत या भोगविलास करने वाले का नाम पुरुष वाचक राम होता है अतः शिष्टाचार से ईश्वर का नाम राम नहीं हो सकता।

जीव—

जीवन अमर और नित्य है—

सर्वगात्रानुगतोऽन्तरात्मा स वेत्तिः दुःखानि सुखानि चात्र।
तद्विप्रयोगान्त न वेत्ति देहः॥20॥
न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेदे।
मिथ्यैतदाहुर्मृत इत्यबुद्धाः। जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति।
दशार्धतैवास्य शरीरभेदः॥27॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 1)

सब शरीराङ्गों में प्राप्त अन्तरात्मा वह दुःखी और सुखों को जानता है उसके वियोग से देह नहीं जानता है, देह नाश पर जीव का नाश नहीं होता मर गया, ऐसा अज्ञजन मिथ्या ही कहते हैं। जीव तो दूसरे देह में चला जाता है, इसके शरीर

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

का विभाग आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पाँच तत्त्वों में हो जाता है।

देह गृह के समान है जीव अमर होता हुआ नये-नये शरीर धारण करता है–

हित्वा हित्वा ह्ययं प्रैति देहाद् देहं कृताश्रयः।
कालसंचोदितः क्षेत्री विशीर्णाद् वा गृहाद् गृहम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 275।33)

काल से प्रेरित हो देह को पुनः पुनः त्यागकर जीव एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होता है जैसे पुराने घर को छोड़ नवीन घर को मनुष्य प्राप्त होता है।

पुनर्जन्म–

ऊँच नीच योनि में जाना–

कामक्रोधसमायुक्तो हिंसालोभसमन्वितः।
मनुष्यत्वात् परिभ्रष्टस्तिर्यग्योनौ प्रसूयते॥
तिर्यग्योन्याः पृथग्भावो मनुष्यार्थे विधीयते।
गवादिभ्यस्तथाऽश्वेभ्योदे वत्वमपि दृश्यते॥

(महा०, वनप० प्रजागरप० अ० 181।213)

कामक्रोध से युक्त हिंसा लोभ सहित जन मनुष्यत्व से गिरा हुआ तिर्यग् योनि में उत्पन्न होता है और तिर्यग् योनि से छूटकर मनुष्य योनि में आता है। गौओं और घोड़ों से भी देवत्व प्राप्ति देखी जाती है।

कर्मरूप अङ्कुर से पुनर्जन्म–

यथा क्षेत्रं मृदूभूतमद्भिराप्लावितं तथा।
जनयत्यङ्कुरं कर्म नृणां तद्वत्पुनर्भवेत्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 320।32)

जैसे खेत नरम हुआ, जल से सींचा हुआ अङ्कुर उत्पन्न करता है। वैसे कर्मरूप अङ्कुर पुनर्जन्म को उत्पन्न करता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

जीव एक शरीर छोड़ते ही तुरन्त पुनर्जन्म धारण करता है–

जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतस्त्वमागतः।
स्त्रीणां पुष्पं समासाद्य सूते कालेन भारत॥

(महा० अनुशासनप० अ० 111।35)

जीवकर्मानुसार तुरन्त रेतस्त्व–बीज भाव पाकर एक शरीर से दूसरे शरीर के स्त्रियों के पुष्प–गर्भ पुष्प को प्राप्त करके समय पाकर उत्पन्न होता है।

पुनः–पुनः जन्म–मरण–

पुनः पुनश्च मरणं जन्म चैव पुनः पुनः।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः॥
मातरो विविधा दृष्टाः पितरश्च पृथग्विधाः॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 16।32)

मरण और जन्म पुनः–पुनः देखा, आहार भोजन नाना प्रकार के खाए, भिन्न–भिन्न स्तन पीये, माताएँ नाना प्रकार की देखीं और पिता भी भिन्न–भिन्न देखे।

जीवात्मा से शरीर वृद्धि–

यथा दीपः शरणे दीप्यमानः प्रकाशते।
एवमेव शरीराणि प्रकाशयति चेतना॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 18।11)

जैसे शरण स्थान को दीपक प्रकाशित करता है इसी भाँति चेतन आत्मा–जीव शरीराङ्गों को प्रकाशित करता है।

शरीर एवं शरीराङ्गों का विकास जीव प्रवेश से ही होता है।

वृक्षों में जीव–

ब्रह्मादिषु तृणान्तेषु भूतेषु परिवर्तते।
जले भुवि तथाकाशे जायमानः पुनः पुनः॥

(महा०, वनप० अ० 2। 72)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

ब्रह्मा से लेकर तृण वनस्पति पर्यन्त वस्तुओं में जीव पुनः पुनः उत्पन्न होने के हेतु जल में, भूमि में, आकाश में जाता है।

मोक्ष या मुक्ति–

ब्रह्मसम्पत्ति–

यदा चायं न बिभेनि यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 26।14)

जब यह मनुष्य भयरहित हो जाता है और अन्य को भी इससे भय नहीं रहता है तथा जब न राग करता है, न द्वेष करता है तब ब्रह्म को प्राप्त होता है।

अभय आदि–

न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च यः।
यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा[1]॥33॥
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥35॥
संयोज्य मनसाऽऽत्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहनीम्।
त्यक्त्वा कामं च मोहं च तदा ब्रह्मत्वमश्नुते॥35॥
यदा श्राव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चात्ययम्।
समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥36॥
यदा स्तुति च निन्दां च समत्वेनैव पश्यति।
काञ्चनं चासं चैव सुखं दुःखं तथैव च॥37॥
शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम्।
जीवितं मरणं चैव ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥38॥
(महा०, शान्तिप० मोक्ष० 326)

1. (महा०, शान्तिप० मोक्ष० 74।52)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

जिससे दूसरा भय न खावे और जो दूसरे से न डरे और जो न राग रखे, न द्वेष रखे वह ब्रह्म को प्राप्त होता है। जब सब प्राणियों के प्रति मनुष्य मन, वचन, कर्म से पाप भाव नहीं करता तब ब्रह्म को प्राप्त करता है। मनुष्य जब मन से आत्मा को संयुक्त कर मूढ़ बनाने वाली ईर्ष्या को छोड़कर तथा काम भाव और मोह को छोड़कर स्थिर होता है तब ब्रह्म को प्राप्त करता है। जब यह मनुष्य शब्द विषय रूप विषय सब प्राणियों में समान निर्द्वन्द्व हो जाता है तब ब्रह्म को प्राप्त होता है। जब मनुष्य अपनी प्रशंसा और निन्दा को समानता से देखता है (सुनकर न हर्ष न शोक होता है) सोने और लोहे को तथा सुख और दुःख को समानता से देखता है तब ब्रह्म को प्राप्त होता है। शीत, उष्ण, अनर्थ, अर्थ, प्रिय, अप्रिय, जीवन, मरण को समानता से देखता है तब ब्रह्म को प्राप्त होता है।

ज्ञान से मोक्ष–

ज्ञानान्मोक्षो जायते राजसिंह! नास्त्यज्ञानादेवमाहुर्नरेन्द्र!।
तस्माज्ज्ञानं तत्त्वतोऽन्वेषितव्यं येनात्मानं मोक्षयेज्जन्ममृत्योः॥

हे राजन्! ज्ञान से मोक्ष होता है, अज्ञान से नहीं, ऐसा कहते हैं। इसलिए ज्ञान वास्तविक रूप में प्राप्त करना चाहिए जो जन्म और मृत्यु से अपने को मुक्त कर सके।

जितेन्द्रिय संयमी शान्त योगी मोक्ष का अधिकारी–

इन्द्रियैरिन्द्रार्थान् यश्चरत्यात्मवशैरिह।
असज्जमानः शान्तात्मा निर्विकारः समाहितः॥
आत्मभूतैरद्भूतः सह चैव विनैव च।
स विमुक्तः परं श्रेयो च चिरेणाधितिष्ठति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 329।15,16)

जो मनुष्य स्वाधीन इन्द्रियों से इन्द्रियार्थों का सेवन करता

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

है, ऐसा असक्त, शान्तात्मा, मनोविकार रहित, समाहित तथा अपने बन्धुओं में भी अलग रहता हुआ या न साथ रहता हुआ जन हो वह विमुक्त परम श्रेय को शीघ्र प्राप्त करता है।

समभाव से मुक्तावस्था–

जीवितं मरणं चोभे सुखदुःखे तथैव च।
लाभालाभे प्रियद्वेष्ये यः समः स च मुच्यते॥
न कस्य चित् स्पृहयते नावजानाति किञ्चन।
निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा सर्वथा मुक्त एव सः॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 19।22)

जीवन–मरण, सुख दुःख, लाभ–अलाभ, प्रिय–अप्रिय दोनों में जो समभाव रखता हो, न किसी का स्वागत, न किसी का अनादर करे, वह निर्द्वन्द्व वीतराग जन सर्वथा मुक्त है।

जल आदि में जीव–योनियाँ–

उदके बहवः प्राणाः पृथिव्यां च फलेषु च।
सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 16।25)

जल में बहुत जीव–योनियाँ हैं, भूमि में और फलों में भी हैं। कुछ सूक्ष्म योनिवाले प्राणी तो तर्क से ही जानने योग्य हैं वे दृश्य नहीं हैं।

मृत शरीर (शव) का दाह कर्म–

ततः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः।
अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः॥

(महा०, मौसलप० अ० 8।33)

अर्जुन ने बलराम और कृष्ण के शरीरों को खोज कर विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा उनका दाह संस्कार कर दिया।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

प्रकृति (जगत् का उपादान कारण)–

अलिङ्गात्प्रकृतिर्लिङ्गैरुपालम्भति आत्मजै।
र्यथापुष्पफलैर्नित्यमृतवोऽमूर्तयस्तथा।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 305।26)

अलिङ्ग प्रकृति–जगत् का कारण प्रकृति जो अलिङ्ग अर्थात् अव्यक्त है, वह सिद्ध होती है जैसे अपने फलफूलों से अमूर्त, अदृश्य ऋतुएँ जानी जाती हैं।

सृष्टि तथा सृष्टि का प्रवाह अनादि–

एतां सृष्टिं विजानीहि कल्पादिषु पुनः पुनः।
यथा सूर्यस्य गगनादुदयास्तमने इह।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 339।75)

इसे सृष्टि जानो, कल्प आदि उत्पत्ति स्थिति कल्पों में पुनः–पुनः होती है जैसे आकाश में सूर्य का उदय और अस्त पुनः–पुनः होता है।

इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसका प्रवाह–प्रवाह से अनादि होना दर्शाया है।

प्रावाहिक प्रसिद्धियाँ व विषमताएँ–

संयोग वियोगान्त आदि–

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्तः समुच्छ्रयाः।
संयोगाः विप्रयोगास्ता मरणान्तं हि जीवितम्।।

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 27।31)

सब सञ्चय क्षय होने वाले हैं, ऊँचे उठे हुए स्थान अन्त में गिरने वाले हैं, संभोग वियोगान्त हैं और जीव का अन्त अर्थात् मरण है।

संसार विनाशान्त और अनित्य है–

सर्वे क्षयान्ताः निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगाश्च वियोगास्ता मरणान्तं च जीवितम्।।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

सर्वं कृतं विनाशान्तं जातस्य मरणं ध्रुवम्।
अशाश्वते हि लोकेऽस्मिन् सदा स्थावरजङ्गमम्॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 44। 19-20)

सब सञ्चय क्षय होने वाले हैं, ऊँचे उठे हुए स्थान अन्त में गिरते हैं, संयोग वियोगान्त हैं और जीवन का अन्त मरण है। सब कार्य वस्तु विनाशान्त हैं उत्पन्न हुए प्राणी शरीर का मरना निश्चित है। इस लोक में स्थावर और जङ्गम सदा नित्य नहीं है, अस्थिर हैं।

यौवन आदि षट्सम्पत्ति अनित्य हैं–

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 205।4)

यौवन, रूप, जीवन, धन, अन्नादि सञ्चय, आरोग्य-स्वास्थ्य, प्रियजन समागम ये छः अनित्य हैं, सदा नहीं बने रहते हैं अतः विद्वान् को इनमें गृध-राग न करना चाहिये।

वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें
वैदिक पुस्तकालय
॥यजुर्वेद॥
॥सामवेद॥
॥अथर्ववेद॥
वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें
वैदिक पुस्तकालय
॥यजुर्वेद॥
॥सामवेद॥
॥अथर्ववेद॥
Scanned with CamScanner
Scanned with CamScanner

नवम पार्श्व

धर्म-कर्म-संस्थान

धर्म का स्वरूप–

एष धर्मो महायोगो दानभूतदया तथा।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम्।।

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 91।32, 33)

यह सार्वभौम धर्म है जो कि दान, प्राणिदया, ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा का सेवन करना है। यह सनातन धर्म का सनातन मूल है।

धर्म का नाम वृष–

वृषो हि भगवान् धर्मो....।

(महा०, शान्तिप० राजध० अ० 90।15)

भगवान् धर्म वृष है, सुख का वर्षक होने से।

वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत!।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 342।28)

भगवान् धर्म लोक में वृष नाम से प्रसिद्ध हैं।

धर्म सदा ही सेवनीय है–

न धर्मकालः पुरुषस्थ निश्चितो न चापि मृत्युः पुरुषं प्रतीक्षते।
सदा हि धर्मस्य क्रियैव शोभना यदा नरो मृत्युमुखेऽभिवर्तते।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 298।17)

धर्माचरण का समय मनुष्य के लिए निश्चित नहीं, मृत्यु मनुष्य की प्रतीक्षा नहीं करती। अतः धर्म का आचरण करना

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

सदा ही शोभनीय है जब कि मनुष्य मृत्यु के मुख में पड़ा है।

युवावस्था से ही धर्मपरायण होना चाहिए–

को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति।
युवैव धर्मशीलः स्यादनित्यं खलु जीवितम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 175)

कौन जानता है कि किसका आज मृत्युकाल होगा, युवावस्था से ही धर्मशील होना चाहिए क्योंकि जीवन अनित्य है।

यतो धर्मस्ततो जयः–

उक्तवानस्मि दुर्बुद्धि मन्दं दुर्योधनं तदा।
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 167। 40-41)

भीष्म पितामह कृष्णजी से कहते हैं कि दुर्बुद्धि दुर्योधन को मैं कह चुका हूँ जिस पक्ष से कृष्ण खड़े होंगे उस ओर से धर्म की प्रवृत्ति होगी और जिस ओर से धर्म का व्यवहार होगा उस ओर जयघोष होगा।

धर्म नित्य है इसका त्याग न करना चाहिये–

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीविस्तस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥ (महा०, स्वर्गारोहणप० अ० 5।63)

कभी कामवासना से, भय से, लोभ से धर्म को न छोड़े, जीवन के हेतु भी धर्म को न छोड़े, क्योंकि धर्म नित्य हैं सुख-दुःख अनित्य हैं, जीव नित्य है, देहधारी का शरीर धारण का हेतु अनित्य है।

पुण्य कर्म–

पवित्र करने वाले कर्म–

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

सत्यार्जवमथाक्रोधः संविभागो दमः शमः।
अनसूयाऽविहिंसा च शौचमिन्द्रियसंयमः॥
पावनानि महाराज नराणीं पुण्यकर्मणाम्।

(महा०, वनप० व्रीहि द्रोणिकाप० अ० 259।18)

सत्य, सरलता, अक्रोध, निज भाग पर निर्भर रहना, दमन, शमन, अनिन्दा, अहिंसा, शौच, इन्द्रियसंयम ये पुण्य कर्म वाले जनों को पवित्र करने वाले कर्म हैं।

विशेषस्त्वत्र विज्ञेयो न्यायेनोपार्जितं धनम्।
पात्रे काले न देशे च साधुभ्यः प्रतिपादयेत्॥

(महा०, वनप० व्रीहि द्रोणिका० अ० 267।32)

यहाँ विशेष यह जानना चाहिये कि न्याय से प्राप्त धन को पात्र, काल, देश में सज्जनों के प्रति देना।

उपादेय कर्म–

देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनस्तथा।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छवसन्न स जीवति॥58॥
सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ्मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः॥64॥
दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम्॥70॥
धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम्।
लाभानां श्रेय आरोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा॥74॥
आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयी धर्मः सदा फलः।
मनो यस्य न शोचति स हि सद्भिर्न जीर्यते॥76॥
मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति।
कामं हित्वा अर्थवान् भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत्॥78॥
मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम्।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः॥84॥

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

तपः स्वधर्मवर्तित्त्वं मनसो दमनं दमः।
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं हीरकार्यनिवर्तनम्।।88।।
ज्ञानं तत्वार्थसम्बोधः शमश्चित्तप्रशान्तता।
दया सर्वसुखैपित्वमार्जवं समचित्तता।।90।।
क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तकः।
सर्वभूतहितः साधुसाधुर्निदयः स्मृतः।।92।।
स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्यं धैर्यमिन्द्रियनिग्रहः।
स्नानं मनो मलत्यागो दानं वैभूतरक्षणम्।।96।।

(महा०, वनप० आरणेय प० अ० 313)

देवता, अतिथि, नौकर और अपने पिता-माता आदि पितर जनों के लिये जो भोजन नहीं देता वह श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है।

प्रवास में रहते हुए का मित्र धन है, घर में मित्र पत्नी है, रोगी का मित्र चिकित्सक है—और मरते हुए का मित्र दान है।

दक्षता-चतुराई ही एकमात्र धर्म कर्म उचित कर्म है, दान एकमात्र यश है, सत्य एकमात्र स्वर्ग देने वाला है, शील एकमात्र सुख है।

धन्यवादों में दक्षता धनों में विद्या-ज्ञानप्राप्ति, लाभों में आरोग्य, सुखों में तुष्टि (सन्तोष) उत्तम है।

अहिंसा ऊँचा धर्म है, त्रयी (वेदत्रयी) धर्म सदा फलवाला है, जिसका मन शुद्ध हो या शुद्ध मन वाला मनुष्य शोच नहीं करता है। सज्जनों से मेलमिलाप पुराना नहीं पड़ता।

मनुष्य मान को छोड़ कर प्रिय बनता है, क्रोध के त्याग से शोच नहीं करता है; काम भाव को त्याग कर अर्थ वाला बनता है और लोभ को छोड़कर सुखी होता है।

दरिद्र (आलस्य वाला और अयत्नशील) मनुष्य मरा जैसा है, शासकहीन राष्ट्र मरा हुआ है, वेदवेत्ता के बिना

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

भोज मरा हुआ है और दक्षिणरहित यज्ञ भी मरा हुआ है।

स्वधर्म में वर्तना तप है, मन का दमन दमन है, द्वन्द्व सहनशीलता क्षमा है, अकार्य से अलग रहना लज्जा है।

ज्ञान है तत्त्वार्थ साक्षात्कार, शम है चित्त की प्रशान्तता, दया है सब प्राणियों के सुख की कामना करना, सरलता है चित्त की समानता।

अति दुर्जय शत्रु, क्रोध है, अनन्त व्याधि लोभ है, सर्व प्राणिहित में रत जन साधु है और निर्दय जन असाधु है।

स्थैर्य है अपने कर्तव्य पर स्थिर रहना, धैर्य है इन्द्रियों पर अधिकार रखना, स्नान है मन के मल का त्याग और दान है प्राणियों की रक्षा करना।

सहज मित्ररूप गुण–

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्।
मित्राणि सहजान्याहुर्वर्तयन्तीह तैर्बुधाः॥

(महा०, शान्तिप० आपद्धर्म० अ० 138।85)

विद्या, शौर्य, दाक्ष्य (चतुराई, बल, धैर्य) ये सहज मित्र हैं इनसे मनुष्य का व्यवहार पड़ता।

अद्रोहः सर्वभूतेषु सन्तोषः शीलमार्जवम्।
तमो दमश्च सत्यं च प्रदानं चेति सम्मितम्॥

(महा०, आश्वमेधिकप० 90। 120)

वैरत्याग, सन्तोष, शील, ऋजुता, तप, दमन, सत्य, प्रदान करना, ये सब समान सद्गुण हैं।

शीलरूप गुण–

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो मानवता सर्वं शीलवता जितम्॥

(महा०, उद्योगप० प्रजा० अ० 34।47)

वस्त्र भूषा से सभा सम्मान जीत लिया, गौयें जिसके

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

पास हों उसने पायस आदि मिष्टान्न जीत लिये, उनकी प्राप्ति उसे हो जाती है, गाड़ी जिसके पास हो उसने मार्ग या मात्रा जीत ली है और शील-सहन शील-सहन शील जिसका हो उसने सब कुछ जीत लिया है।

शील का स्वरूप–

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥
यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात्कथञ्चन॥
तत्तु कर्म तथा कुर्याद्येन श्लाघ्येत संसदि।
शीलं समासेनैतत्ते कथितं कुरुसत्तम॥

(महा०, शान्तिप० राज० अ० 124। 66-68)

सर्व प्राणियों के प्रति मन, वचन, कर्म से अद्रोहण (वैरत्याग) दया, दान यह शील प्रशंसनीय है। जिससे अन्यों का हित न हो और जिस से स्वयं लज्जा भाव होता हो उस ऐसे अपने कर्म वा पुरुषार्थ को न करे।

उस कर्म को अवश्य करना चाहिए जिससे सभा में प्रशंसा पावे, यह संक्षेप से शील अर्थात् उत्तम गुण स्वभाव की बातें राजन् तुम से कही हैं।

महापाप कृतघ्नता–

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता राजन् कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

(महा०, शान्तिप० आपद्धर्म० अ० 172।25)

ब्रह्महत्यारे, सुरापान करने वाले, चोर तथा व्रतभङ्ग करने वाले के सम्बन्ध में तो निष्कृति (प्रायश्चित्त, प्रतिविधान, छुटकारा) है किन्तु कृतघ्न के लिए नहीं है, कृतघ्नता महापाप है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

दोष (काम बन्धन)–

कामबन्धनमेवैकं नान्यदस्तीह बन्धनम्।
कामबन्धनमुक्तो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 251 7)

कामवासना ही बन्धन है, अन्य यहाँ बन्धन नहीं है, काम वासना रूप बन्धन से छूटा हुआ ब्रह्मप्राप्ति में समर्थ होता है।

मन वाणी शरीर से होने वाले विविध पाप कर्म–

कायेन त्रिविधं कर्म वाचा चापि चतुर्विधम्।
मनसा त्रिविधं चैव दश कर्मपथांस्त्यजेत्॥
प्राणातिपातः स्तैन्यं च परदारानथापि च।
त्रीणि पापानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत्॥
असत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा।
चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत्॥
अनभिध्या परस्वेषु परसत्त्वेषु सौहृदम्।
कर्मणां फलमस्तीति त्रिविधं मनसा चरेत्॥
(महा०, अनुशासनप० अ० 131 1-5)

शरीर से होने वाले तीन, वाणी से होने वाले चार, और मन से होने वाले तीन प्रकार के कर्म इस भाँति इन दश कर्मपथों को त्याग देना चाहिए। अर्थात् प्राणघात, चोरी, परस्त्रीगमन शरीर से होने वाले इन तीन पाप कर्मों को सर्वथा छोड़ दे। असम्बद्ध प्रलाप, कठोर भाषण, अतिनिन्दा, झूठ बोलना वाणी से होने वाले इन चार पाप कर्मों को राजन्! न करे, न सोचे। परधनों में अनिच्छा, परजनों में मैत्री, स्नेह, सुहृदयता, कर्मों का फल मिलता है ऐसी आस्था ये तीन मन से आचरण करे इनके विपरीत परधनों में इच्छा, परजनों में घृणा या वैर, कर्मों

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

का फल नहीं मिलता ऐसी भावना को छोड़ दे या न करे।

सुरापान आदि वेदविरुद्ध–

सुरा मत्स्या मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 265।9)

सुरा (शराब), मछली, मधु, मांस, आसव, मांसौदन, यह धूर्त जनों ने प्रचलित कर दिए हैं। ये वेदों में नहीं कहे हैं।

पाप में शपथ (गाली)–

अकृतज्ञस्तु मित्राणां"। एकः सम्पन्नमश्नातु।
श्वशुरात् तस्य वृत्तिः स्यात्, दिवा गच्छतु मैथुनम्॥
प्रेष्यो भवतु राज्ञश्च अनाहिताग्निर्मियताम्॥
निराकरोतु वेदाँश्च अतिथिर्गृहंसस्थोऽस्तु।
पठतां विस्वरं पदम्, शुल्केन तु ददत् कन्याम्॥
शरणागतं सन्त्यजतु यस्ते हरति पुष्करम्॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 94।32)

अगस्त्य के पुष्कर (कमल) की चोरी के प्रसङ्ग में, शपथ अर्थात् गाली देने के प्रसङ्ग में निन्दनीय बातें दोष रूप में कही हैं–'मित्रों का अकृतज्ञ अर्थात् कृतघ्न होना, अकेला अच्छे भोग भोगना, श्वसुर से जीवन निर्वाह, दिन में मैथुन करना, राजा का नौकर या दास रहना अनाहिताग्नि रहना हवन यज्ञ के अधिकार से रहित, वेदों की अवज्ञा, संन्यासी गृहनिवासी, स्वर रहित पढना, बदले में धन लेकर कन्या का विवाह करना, शरणागत का त्याग करना आदि वह करे जिस ने तेरा कमल चुराया हो।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

दोषों के उत्पत्तिकारण–

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(महा०, भगवद्गीताप० अ० 26।(3) 62, 63)

विषयों का ध्यान करते रहने से मनुष्य का उन में लगाव हो जाता है, लगाव से काम उत्पन्न होता है काम से क्रोध, क्रोध से संमोह, संमोह से स्मृतिविभ्रम, स्मृतिविभ्रम से बुद्धिनाश, बुद्धिनाश से नष्ट हो जाता है।

लोभात् क्रोधः प्रभवति परदोषैरुदीर्यते।
क्षमया तिष्ठते राजन् क्षमया विनिवर्तते॥7॥
सकल्पाज्जायते कामः सेव्यमानो विवर्धते।
यदा प्राज्ञो विरमते तदा सद्यः प्रणश्यति॥8॥
अज्ञानप्रभवो मोहः पापाभ्यासात्प्रवर्तते।
यदा प्राज्ञेषु रमते तदा सद्यः प्रणश्यति॥11॥
प्रीत्या शोकः प्रभवति वियोगात् तस्य देहिनः।
यदा निरर्थकं वेत्ति तदा सद्यः प्रणश्यति॥13॥
अज्ञानप्रभवो लोभो भूतानां दृश्यते सदा।
अस्थिरत्वं च भोगानां दृष्ट्वा ज्ञात्वा विनिवर्तते॥21॥

(महा०, शान्तिप० आपद्ध० अ० 163)

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है और दूसरे के दोषों से वह बढ़ जाता है, क्षमा से ठहर जाता है और क्षमा से वह दूर भी हो जाता है। सङ्कल्प से काम भाव उत्पन्न होता है सेवन करने पर बढ़ता है, जब बुद्धिमान् उस से उपराम होता है तो वह तुरन्त नष्ट हो जाता है। अज्ञान से मोह उत्पन्न होता है पाप के अभ्यास से चलता है, जब समझदारों में सत्सङ्ग करता है तब

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वह मोह तुरन्त नष्ट हो जाता है। प्राणी का प्रीति के कारण वियोग से शोक होता है, जब प्रीति करना निरर्थक असार समझता है तब शोक नष्ट हो जाता है। प्राणियों का अज्ञान से लोभ उत्पन्न हुआ दिखाई पड़ता है, भोगों की अस्थिरता देखकर और जानकर लोभ हट जाता है।

दोष दूरीकरण के साधन–

अप्रमादाद् भयं रक्षेत्।।6।।
उपद्रवांस्तथा रोगान् हितजीर्णमिताशनात्।
लोभं मोहं च सन्तोषाद् विषयांस्तत्त्वदर्शनात्।।8।।
उत्थानेन जयेत्तन्द्रां वितर्कं निश्चयाज्जयेत्।
मौनेन बहुभाष्यं च शौर्येण च भयं त्यजेत्।।9।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 274)

सावधानता से भय स्थान का बचाव करना, उपद्रवों तथा रोगों को हित भोजन जीर्ण होने (पचने वाले) भोजन और मात्रानुसार भोजन करने से, लोभ, मोह को सन्तोष से विषयों को यथार्थ ज्ञान से तन्द्रा (अर्धनिद्रा) रूप आलस्य को खड़े हो जाने से जीते, कुतर्क या सन्देह को निश्चय से जीते। मौन से बहुत बोलने को और शौर्य से भय को छोड़े।

छिन्दति क्षमया क्रोधं कामं संकल्पवर्जनात्।
सत्वसंसेवनान्निद्रामप्रमादाद् भयं तथा।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 301।27)

क्रोध को क्षमा से नष्ट करते हैं, काम भाव को सङ्कल्प-त्याग से सत्त्व (सात्त्विक भाव के सेवन) से निद्रा को अप्रमाद से भय को नष्ट करे।

कर्म का माहात्म्य–

कर्मणः फलनिर्वृत्तिं स्वयमश्नाति कारकः।
प्रत्यक्षं दृश्यते लोके कृतस्यापकृतस्य च।।9।।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित्॥10॥
अर्था वा मित्रवर्गो वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितम्।
श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं तथैवाकृतकर्मभिः॥15॥
स्वं चेत् कर्मफलं न स्यात् सर्वमेवाफलं भवेत्।
लोको दैवमालक्ष्य उदासीनो भवेन्ननु॥19॥
अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैवमनुवर्तते॥
वृथा भ्राम्यति सम्प्राप्य पतिं क्लीवमिवाङ्गना॥20॥
कृतः पुरुषकारस्तु दैवमेवानुवर्तते।
न दैवमकृते किञ्चित्कस्यचिद् दातुमर्हति॥22॥
पाण्डवानां हृतं राज्यं धार्तराष्ट्रमहाबलैः।
पुनः प्रत्याहृतं चैव न दैवाद् भुजसंश्रयात्॥40॥
यथा तैलसंक्षयाद् दीपः प्रह्रासमुपगच्छति।
तथा कर्मक्षमाद् दैवं प्रह्रासमुपगच्छति॥44॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 6)

कर्म की फल सिद्धि को स्वयं कर्ता भोगता है, अच्छे और बुरे कर्म का संसार में प्रत्यक्ष परिणाम देखा जाता है। शुभ कर्म से सुख और पाप कर्म से दुःख होता है। किए हुए कर्म का फल मिलता है, कर्म बिना फल, कहीं भी भोगा नहीं जाता है। धन या मित्र या ऐश्वर्य या कुलीनता और लक्ष्मी भी भोगना कर्म हीन जनों से दुर्लभ है। यदि कर्म का फल न हो तो कर्म निष्फल हो जावें और लोग देव का आश्रय लेकर निश्चय कर्म करने से उदासीन हो जावें। जो जन मनुष्योचित कर्म न करके दैव के भरोसे रहता है। वह नपुंसक पुरुष को प्राप्त स्त्री की भाँति वह व्यर्थ जीवन यात्रा करता है। पुरुषार्थ किया हुआ ही दैव के रूप में आता है, दैव पुरुषार्थ किए बिना किसी को कुछ नहीं दे सकता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

पाण्डवों का राज्य धतराष्ट्र के पुत्रों द्वारा छीना हुआ पुनः भुजबल (पुरुषार्थ) से प्राप्त किया है, दैव से नहीं। जैसे तेल के क्षय से दीपक क्षीणता को प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार कर्म के क्षय से दैव क्षीण हो जाता है।

कर्म का फल कर्ता अवश्य प्राप्त करता है–

यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति।
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते।।
यथा छायातपौ नित्यं सुसम्बद्धौ निरन्तरम्।
तथा कर्म च कर्ता च सम्बद्धावात्मकर्मभिः।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 1।74, 75)

जैसे मिट्टी के पिण्ड से कर्ता (कुम्हार) जो जो चाहता है करता है इसी प्रकार मनुष्य अपने किए हुए कर्मानुसार फल प्राप्त करता है। जैसे छाया और धूप नित्य निरन्तर साथ है ऐसे ही कर्म और कर्ता अपने किए कर्मों से बँधे हैं।

कर्म का नाश नहीं होता कर्म किसान की भाँति फल पाता है–

येन येन यथा यद्यत् पुरा कर्म सुनिश्चितम्।
तत्तदेवोत्तरं भुंक्ते नित्यं विहितमात्मनः।।10।।
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च।
स्वं कालं नातिवर्तन्ते यथा कर्म पुराकृतम्।।12।।
यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति।।16।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 322)

जिस–जिस साधन या अङ्ग से जो पूर्व कर्म हुआ, उस उस अपने किए कर्म को मनुष्य अवश्य भोगता है। जैसे अनायास फूल और फल अपने समय का उल्लंघन न करके समय पर प्राप्त होते हैं एवं पूर्व किया कर्म भी समयानुसार

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

प्राप्त होता है। जैसे सहस्त्रों गौओं के मध्य में बछड़ा अपनी माता को पा लेता है ऐसे पूर्व किया कर्म कर्ता को प्राप्त होता है।

जिस अङ्ग से और जिस अवस्था से कर्म किया जाता है फल भी वैसा होता है–

येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः।
तेन तेन शरीरेण तत्तत् फलमुपाश्नुते॥
यस्यां यस्यामवस्थायां यत् करोति शुभाशुभम्।
तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि॥
न नश्यति कृतं कर्म सदा पञ्चेन्द्रियैरिह।
ते ह्यस्य साक्षिणो नित्यं षष्ठ आत्मा तथैव च॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 7। 3-5)

जिस-जिस अङ्ग से जो-जो कर्म करता है उस-उस अङ्ग से उस-उस फल को प्राप्त होता है। जिस-जिस अवस्था में जो शुभ-अशुभ कर्म करता है उस-उस अवस्था में जन्म-जन्म में मनुष्य फल इन्द्रियों से किया हुआ कर्म नष्ट नहीं होता है। वे पाँचों इन्द्रियाँ और छठा आत्मा उसके साक्षी हैं।

वैदिक साहित्य pdf में प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन में वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें
वैदिक पुस्तकालय
॥यजुर्वेद॥
॥सामवेद॥
॥अथर्ववेद॥
वैदिक साहित्य pdf में प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन में वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें
वैदिक पुस्तकालय
॥यजुर्वेद॥
॥सामवेद॥
॥अथर्ववेद॥
Scanned with CamScanner
Scanned with CamScanner

दशम पार्श्व

वैराग्य-संस्थान

धन को मनुष्य या मनुष्य को धन छोड़ देता है–

धनं वा पुरुषो राजन् पुरुषं वा पुनर्धनम्।
अवश्यं प्रजहात्येव तद्विद्वाम् कोऽनुसंज्वरेत्॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 104।45)

राजन्! एक दिन धन को मनुष्य छोड़ देता है या धन मनुष्य को अवश्य छोड़ देता है ऐसा जानने वाला जन धन के नाश में दु:खी नहीं होता।

मरने पर धन को दूसरे भोगते हैं–

अन्यो धनं प्रेतस्य भुंक्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेध्यमानाः॥

(महा०, उद्योगप० प्रजा० अ० 40।16)

मरे हुए मनुष्य का धन तो दूसरे जन भोगते हैं और शरीर की धातुओं को पक्षी खा जाते हैं या अग्नि भस्म कर देती है, केवल पुण्य और पाप से संयुक्त हुआ इन दो के साथ ही परलोक पुनर्जन्म या मोक्ष को प्राप्त होता है।

सञ्चय क्षयान्त आदि–

सञ्चये च विनाशान्ते मरणान्ते च जीविते।
संयोगे व वियोगान्ते को नु विप्रणयेन्मनः॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 104।44)

अन्त में विनष्ट होने वाले सञ्चय में, अन्त में मरने वाले जीवन में और अन्त में वियोग वाले संयोग में कौन मन को फँसावे।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 27।31)

सब सञ्चय राशि अन्त में क्षय होने वाली हैं, सब ऊँचे खड़े हुए स्थान अन्त में गिरने वाले हैं, संयोग अन्त में वियोग को प्राप्त होने वाले और जीवन का मरण अन्त में होता है।

विविध दुःखमय संसार–

सन्ति पुत्राः सुबहवो दरिद्राणामनिच्छताम्।
नास्ति पुत्रः समृद्धानां विचित्रं विधिचेष्टितम्।।24।।
दृश्यते हि युवैवेह विनश्यन् वसुमान् नरः।
दरिद्रश्च परिक्लिष्टः शतवर्षो जरान्वितः।।27।।
प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।।29।।

(महा०, शान्तिप० राजध० अ० 28)

न चाहते हुए भी दरिद्रों के बहुत पुत्र हैं और समृद्धों धनिकों का एक भी पुत्र नहीं, यह विचित्र है। धनवान् युवा जन भी मरा हुआ देखा जाता है और दरिद्र जन क्लेश पाता हुआ भी बुढ़ापे तक सौ वर्ष जीता है। प्रायः धनवानों की भोगने में शक्ति नहीं होती।

मित्र और शत्रु स्थिर नहीं, किन्तु प्रयोजन वश होते हैं–

नास्ति मैत्री स्थिरा नाम न च ध्रुवमसौहृदम्।
अर्थयुक्त्यानुजायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 138।41)

मैत्री स्थिर नहीं और न शत्रुता स्थिर है किन्तु प्रयोजन वश मित्र और शत्रु हो जाते हैं।

माता-पिता आदि के सम्बन्ध अनित्य हैं–

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः।।36।।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

मातापितृसहस्राणि पुत्रदाराशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥8॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्मानु० अ० 28)

जैसे काष्ठ काष्ठ महानद में मिलते हैं मिलकर अलग हो जाते हैं वैसा ही प्राणियों का समागम है। माता पिता सहस्रों पुत्र स्त्रियाँ सैकड़ों संसार में जन्म-जन्मान्तरों में अनुभव किए हैं किसके वे हैं और किसके हम हैं।

यथा काष्ठं च काष्ठं च..तद्वद् भूत समागमः।
एवं पुत्राश्च पौत्राश्च ज्ञातयो बान्धवाश्च।
तेषां स्नेहो न कर्तव्यो विप्रयोगो ध्रुवां हिते॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 174)

जैसे काष्ठ काष्ठ महानद में मिल जाते हैं एवं मिलकर अलग हो जाते हैं ऐसे ही प्राणियों का समागम है। इसी प्रकार पुत्र, पौत्र, ज्ञाति, बन्धुजन हैं। उनमें राग न करना चाहिए तुम्हारे लिये वियोग उनसे होना ही निश्चित है।

यौवन, रूप, जीवन आदि अनित्य हैं–

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 205।4)

यौवन, रूप, जीवन, द्रव्यसञ्चय, आरोग्य, प्रिय सहवास ये सब अनित्य हैं। इनमें विद्वान् लालसा नहीं करता है।

मृत्यु तो एक जीर्ण घर से दूसरे घर को जाने के समान है–

हित्वा हित्वा ह्ययं प्रैति देहाद्देहं कृताश्रयः।
कालसंचोदितः क्षेत्री विशीर्णाद्वा गृहाद् गृहम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 275।33)

जीव कर्मों के अनुसार समय से प्रेरित हुआ एक देह से

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

दूसरे देह को प्राप्त होता है जैसे मनुष्य एक जीर्ण (पुराने) घर से दूसरे घर को प्राप्त होता है इससे दुःख या चिन्ता करना योग्य नहीं।

विषय भोगों में रति रखना अति दुःखदायक है–

इषुमपातमात्रं हिं स्पर्शयोगे रतिः स्मृता।
रसने दर्शने घ्राणे श्रवणे च विशाम्पते॥
ततोऽस्य जायते तीव्रा वेदना तत्क्षयात् पुनः।
अबुधा न प्रशंसन्ति मोक्षं सुखमनुत्तमम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 295।32, 33)

राजन्! स्पर्श विषय में, रस, गन्ध, शब्द में रति बाण के विंधने की भाँति है क्योंकि रति के पश्चात् तीव्र पीड़ा होती है किन्तु बेसमझ लोग अत्युत्तम मोक्ष सुख की भी प्रशंसा नहीं करते।

संसार असार है–

अपां फेनोपमं लोकं विष्णोर्मायाशतैर्वृतम्।
चित्रभित्तिप्रतीकाशं नलसारमनर्थकम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० 301। 59)

जल के फेन के समान अस्थिर है विष्णु व्यापक–ईश्वर की सैकड़ों मायाओं से भरा है, अथवा चित्रभित्ति के सदृश सत्त्व रहित या जलसार पोल (नरसल में सार जैसे नहीं होता है) वैसा यह सार रहित है।

जीवन शरीर में आकर आत्मोत्थान नहीं करता तो द्वन्द्वों में ही पड़ा रहता है–

द्वन्द्वमेति च निर्द्वन्द्वस्तासु तास्विह योनिषु।
शीर्षरोगेऽक्षिरोगे च दन्तशूले गलग्रहे॥
जलोदरे तृषारोगे ज्वरगण्डे विषूचके।
श्वित्रकुष्ठेऽग्निदग्धे च सिध्मापस्मारयोरपि॥

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

यानि चान्यानि द्वन्द्वानि प्राकृतानि शरीरिषु।
उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येषोऽभिमन्यते।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 303।5-7)

जीव निर्द्वन्द्व है तो भी उन-उन योनियों में द्वन्द्व अर्थात् सुख-दुःख को प्राप्त होता है, जैसा कि शिर के रोग में, नेत्र रोग में, दन्तपीड़ा में, गलग्रह में, जलोदर में, तृषारोग में, गण्डज्वर में, विषूचक में, श्वेतकुष्ठ में, अग्निदग्ध में, गलितकुष्ठ में, अपस्मार में और जो प्राकृतिक विचित्र द्वन्द्व जीवों में उत्पन्न होते हैं उनको अनुभव करता है।

सुलभा संन्यासिनी का राजा जनक को वैराग्य का उपदेश—

बड़ा सम्राट् भी सेर भर अन्न, दूध, घर में एक बिस्तर मात्र का अधिकारी है—

य इमां पृथिवीं कृत्स्नामेकच्छत्रां प्रशास्ति ह।
एकएव स वै राजा पुरमध्यावसत्युत।।134।।
तत्पुरे चैकमेवास्य गृहं यदधितिष्ठति।
गृहे शयनमप्येकं निशायां यत्र लीयते।।135।।
तदनेन प्रसक्तेन फलेनैवेह युज्यते।।137।।
गोशतादपि गोक्षीरं प्रस्थ धान्यशतादपि।
प्रासादादपि त्वद्वार्धं शेषाः परविभूतयः।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 320)

जो मनुष्य इस सारी पृथिवी को स्वाधीन कर शासन करता है वह राजा पृथिवी भर में एक नगर में रहता है और उस नगर में भी एक ही घर में वास करता है और उस घर में भी एक बिस्तरा पलंग ही उसके लिये है जिस पर रात्रि में सोता है केवल इतना ही फल सारे पृथिवी भर के राज्य का है। सैकड़ों गौओं से सेर भर दूध तथा सैकड़ों अन्न भरे

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

महलों में आधा सेर अन्न ही तेरे लिये है शेष दूसरों की सम्पत्तियाँ हैं।

राजता भी परतन्त्रता है–

यदा ह्याज्ञापयत्यन्यांस्तत्रास्योक्ताऽस्वतन्त्रता।
अवशः कार्यते तत्र तस्मिंस्तस्मिन् क्षणे स्थितः॥40॥
स्वप्नकामो व लभते स्वप्तुं कार्यार्थिभिर्जनैः।
शयने चाप्यनुज्ञातः सुप्त उत्थाप्यतेऽवशः॥41॥
स्नाह्यलभ पिब प्राश जुहुध्यग्नीन् यजेत्यपि।
ब्रवीहि शृणु चापीति विवशः कार्यते परैः॥42॥
अभिगम्याभिगम्यैवं याचन्ते सततं नराः।
न चाप्युत्सहते दातुं वित्तरक्षी महाजनान्॥43॥
दानं कोषक्षयोऽप्यस्य वैरं चाप्यप्रयच्छतः।
क्षणेनास्योपवर्तन्ते दोषा वैराग्यकारकाः॥44॥
प्राज्ञान् शूरांस्तथैवाढ्यानेकस्थानपि शंकते।
भयमप्यभये राज्ञो यैश्च नित्यमुपास्यते॥45॥
तथा चैते प्रदुष्यन्ति राजन् ये कीर्तिता मया।
तथैवास्य भयं तेभ्यो जायते पश्य यादृशम्॥46॥
सर्वः स्वे स्वे गृहे राजा सर्वः स्वे स्वे गृहे गृही।
निग्रहानुग्रहान् कुर्वंस्तुल्यो जनक राजभिः॥47॥
पुत्रादारास्तथैवात्मा कोशो मित्राणि सञ्चयः।
परैः साधारण ह्येते तैस्तैरेवास्य हेतुभिः॥48॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 320)

राजा जब अन्यों को आज्ञा देता है तब इसकी परतन्त्रता है, अवश हो कार्य में लगता है। उस-उस क्षण में नियत हुआ सोना चाहता हुआ भी सो नहीं पाता। प्रयोजन वाले जनों द्वारा बिस्तरे पर भी अनुमति पाया हुआ सोता हुआ उठा दिया जाता है। राजन्! स्नान कर, उबटन कर, पी, खा, होम

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कर, अग्नियों का यजन कर, बोल, सुन इत्यादि कहने पर कार्य में तत्पर होना पड़ता है। पुनः पुनः जाकर लोग इससे याचना करते हैं। धनरक्षी राजा देने को तैयार नहीं होता। दे देने में कोषक्षय, न देने पर वैर इसके प्रति हो जाता है, क्षण भर में इसके अन्दर राज्य से ग्लानि कराने वाले दोष आ जाते हैं। एक स्थान पर एकत्र हुए विद्वानों, बलवानों, धनिकों को भी शङ्का की दृष्टि से देखता है। अभय स्थान में भी भय राजा को जिनसे प्राप्त होता है। हे राजन्! उक्त दोष देखे हैं जो मैंने कहे हैं। उसी प्रकार उनसे इस राजा को, जो भय होता है उसे देख सब कोई अपने-अपने घर में राजा, सब कोई अपने-अपने घर में घर वाला, अकृपा, कृपा, बन्धन और छूट करता हुआ हे जनक! साधारण जन भी राजाओं के समान है, पुत्र, स्त्रियाँ तथा अपना आत्मा, कोश, मित्र, सञ्चय दूसरे के साथ उन-उन हेतुओं से ये सामान्य हैं।

को राज्यमभिपद्यते प्राप्य चोपशमं लभेत्।
ममेदमिति यच्चेदं पुरं राष्ट्रं च मन्यसे।।153।।
ननु नाम त्वया मोक्षः कृत्स्नः पञ्चशिखाच्छ्रुतः।
सोपायः सोपनिषदः सोपसङ्गः सनिश्चयः।।162।।
तस्य ते मुक्तसङ्गस्य पाशानाक्रम्य तिष्ठतः।
छत्रादिषु विशेषेषु पुनः सङ्गः कथं नृपः।।163।।
श्रुतं ते न श्रुतं मन्ये मृषावाऽपि श्रुतं श्रुतम्।।164।।
अथवा श्रुतसंकाशं श्रुतमन्यच्छ्रुतं त्वया।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 320)

पुनः सुलभा संन्यासिनी राजा जनक से कहती है- हे राजन्! कौन ऐसा है जो राज्य को तो प्राप्त करे, पुनः प्राप्त करके शान्ति लाभ पावे अर्थात् कोई नहीं। मेरा यह नगर या

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

राष्ट्र है ऐसा तुम मानते हो। भला तुमने महर्षि पञ्चशिख आचार्य से मोक्ष का श्रवण साधन, और उपनिषद्, विद्या सहित, रहस्यसहित, आन्तरिक सहयोगी वृत्त सहित निश्चय सहित किया है। उस तुम सङ्गरहित पाशों का अतिक्रमण कर चुके हुए का राजछत्र आदि विशेष वस्तुओं में पुनः सङ्ग क्यों हो गया। हे राजन्! तुम्हारे सुने हुए मोक्ष को मैं न सुना हुआ, न समझा हुआ मानती हूँ, अथवा तुम्हारे सुने हुए मोक्ष विषय को मैं व्यर्थ सुना मानती हूँ, अथवा सुना हुआ मोक्ष सुना जैसा न कि भलीभाँति सुना, किन्तु तुमने कुछ और ही सुना है।

मृत्यु से सब आवृत हैं, धर्म पोत से तरना चाहिए–

कामं क्रोधं च मृत्युं च पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्म-दुर्गाणि सन्तर॥
मृत्युनाभ्याहते लोके जरया परिपीडिते।
अमोघासु पतन्तीषु धर्मपोतेन सन्तर॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 321 17,18)

महर्षि व्यास शुक्र को उपदेश देते हैं कि काम, क्रोध, मृत्यु, पञ्च इन्द्रियों वाली नदी को धृति-धर्म भावना रूप नौका बनाकर जन्म दुर्गों को तैर। मृत्यु से आघात पाए और जर अर्थात् शरीर की क्षीणता से पीड़ित संसार में अमोघ (निरन्तर) बहती गिरती नदीवाले सागर को धर्मरूप पोत से तैर।

महर्षि व्यास का शुक को निर्ममत्व का उपदेश–

न मातृपितृबान्धवा न संस्तुतः प्रियो जनः।
अनुव्रजन्ति संकटे व्रजन्तमेकपातिनम्॥50॥
हिरण्यरत्नसञ्चयाः शुभाशुभेन सञ्चिताः।
न तस्यदेहसंक्षये भवन्ति कार्यसाधकाः॥52॥

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

अनुगम्य विनाशान्ते निवर्तन्ते ह बान्धवाः।
अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातयः सुहृदस्तथा॥74॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 321)

न माता, पिता, बान्धव, न प्रशंसित प्रिय जन ही संकट में साथ जाते हैं। अकेले पड़ते हुए को पीछे या साथ-साथ स्वर्ण रत्नों के सञ्चय, शुभ अशुभ से सञ्चित किए हुए सब चले जाते हैं। वे उसके देह नाश पर कार्य साधक नहीं होते हैं और बान्धव भी शव के पीछे जाते हुए अग्नि में शव को फेंककर बन्धु, मित्र सब साथ घर को लौट आते हैं।

तथा—

मातृपितृसहस्राणि पुत्रदाराशतानि च।
तान्यनन्तान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥85॥
अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्।
न तं पश्यामि यस्याहं तञ्च पश्यामि यो मम॥86॥
न तेषां अवता कार्यं च कार्यं तव तैरमि।
स्वकृतैस्तानि जातानि अवांशचैव गमिष्यति॥87॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 321)

माता पिता, सहस्रों पुत्र, दारा सैकड़ों एवं अनन्त हुए हैं किसके वे और किसके हम। मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं, न मैं अन्य किसी का, न मैं उसे देखता हूँ जिसका मैं हूं और न उसे देखता हूँ जो मेरा हो। न उनके लिये तुझे कर्तव्य है, न उनके द्वारा तेरा कुछ करने योग्य है, अपने कर्मों से सब वे हुए और आप भी अपने कर्मों से इस संसार से चला जायेगा।

ममेति च अवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्।

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 51। 29)

संसार में वस्तुओं में ममत्व करना मृत्यु है। न ममत्व

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

करना अपने नित्यत्व का अनुभव करना है।

दुःख जरा मृत्यु से आक्रान्त जीव मात्र को जान वैराग्य धारण करना–

तत्र मृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतः।
संसारे पच्यते जन्तुस्तत्कथं नावबुध्यते॥

(महा० शान्तिप० मोक्ष० अ० 309।27)

इस प्रकार मृत्यु, जरा–बुढ़ापा, दुःखों से सदा आक्रान्त जीवमात्र पकता है, अवस्थान्तरित होता रहता है। ऐसा जानकर भी वह क्यों नहीं समझ पाता है?

पुत्रदाराकुटुम्बेधु सक्तः सीदन्ति जन्तवः।
सरः पंकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव॥30॥
नहि त्वां प्रस्थितं कश्चित् पृष्ठतोऽनुगमिष्यति।
सुकृतं दुष्कृतं च त्वां यास्यन्तमनुयास्यति॥35॥
अस्थिस्थूणस्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः॥42॥
जरा शोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यज॥43॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 329)

पुत्र, स्त्री कुटुम्बों में फँसे हुए जन ऐसे पीड़ित रहते हैं जैसे सरोवर–तड़ाग के पङ्क प्रदेश में फैले हुए बूढ़े जङ्गली हाथी। जब तुम संसार से प्रस्थान करोगे तब कोई तुम्हारे पीछे–पीछे नहीं जायगा, केवल सुकृत और दुष्कृत ही तुम्हारे साथ जायगा। हड्डी, स्थूण, नाड़ियों से युक्त मांस और रक्त से लिये हुए, चमड़े से ढके हुए, दुर्गन्ध वाले मूत्र–पुरीष से और जरा, शोक से परिपूर्ण, रोगों के आयतन, दुःखी, रोगी, मैले, अनित्य, पृथिवी जल आदि के वास को छोडो।

अतीत अनित्य वस्तुओं का शोक न करना–

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

द्रव्येषु समतीतेषु ये गुणास्तान्न चिन्तयेत्।
न तानाद्रियमाणस्य स्नेहबन्धः प्रमुच्यते।।५।।
दोषीदर्शी भवेत् तत्र यत्र रागः प्रवर्तते।
अनिवधित्वं पश्येत्तथा क्षिप्रं विरज्यते।।६।।
नार्थो न धर्मो न यशो योऽतीतमनुशोचति।
अन्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते।।७।।
मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते।।९।।
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत् तत्र न पण्डितः।।१४।।
प्राक् सम्प्रयोगाद् भूतानां नास्ति दुःखं परायणम्।
विप्रयोगास्तु सर्वस्य न शोचेत् प्रकृतिस्थित।।२७।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 330)

नष्ट हुई, गई हुई वस्तुओं के गुणों का चिन्तन न करे, उन में राग रखने वाले का स्नेह बन्धन नहीं छूटता है। जहाँ राग हो उनमें तो दोषदर्शी होना चाहिए, उनमें अपना क्षय ही अनुभव करे तो शीघ्र विरक्त हो जाता है। जो मनुष्य गए हुए का शोच करता है उसका न अर्थ सिद्ध होता है न धर्म, न यश, अतः अन्य भाव–अपना पन न रखना चाहिए क्योंकि वह राग निवृत्त नहीं होता, मरे या नष्ट हुए पिछले को सोचता है, वह दुःख से दुःख को प्राप्त हो वर्तमान और भविष्य दोनों को दुःख रूप बनाता है। यौवन रूप जीवन द्रव्य सञ्चय, आरोग्य, प्रियजन का सङ्ग, अनित्य है, बुद्धिमान् उसमें लालसा न करे। वस्तुओं के प्रयोग से संयोग से पूर्व–उनमें राग न रखने से पूर्व नष्ट होने का दुःख नहीं होता है किन्तु वियोग से सबको होता है अतः स्वभाव स्थित होकर उसमें शोच न करे।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

क्षुरधारा विषं सर्पो बह्निरित्येकतः स्त्रियः।

(महा०, अनुशासनप० अ० 40।5)

छुरे की धार, विष, सर्प, अग्नि, और स्त्री ये सब समान हैं। अन्त समय में कोई किसी का साथी नहीं–

एकः प्रसूयते राजन्नेक एवं विनश्यति।
एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्॥11॥
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः।
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च॥13॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं जनाः।
मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः॥
तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुच्छति॥14॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 51-11)

राजन्! अकेला जीव जन्मता है और मरता है। अकेला ही दुःखों को पार होता है, अकेला दुर्गति (दुःख) को प्राप्त होता है। पिता, माता, भ्रता, पुत्र, गुरु, ज्ञाति (परिचित), सम्बन्धि, गण और मित्र वर्ग भी सहायक न होकर मृत शरीर को काष्ठ, ढेले, पत्थर की भाँति छोड़कर मुहूर्त भर रोकर पीछे लौट जाते हैं। उनके द्वारा छोड़े हुए मनुष्य के साथ धर्म ही जाता है।

वन में रहते हुए भी राग का होना मृत्यु के समान है–

अथवा वसतः पार्थ वने वन्येन जीवतः।
ममता यस्य द्रव्येषु मृत्योरास्ये स वर्तते॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 13-7)

राजन्! वन में रहते हुए वानप्रस्थ में भी वन्य भोजन आदि पर जीवन निर्वाह करते हुए भी जिस की ममता (राग) वस्तुओं में है, वह मृत्यु के मुख में हैं।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैराग्य (दृष्ट वैराग्य) की प्राप्ति के कारण–

स्नेहायतननाशाच्च धननाशाच्च पार्थिव!
आधिव्याधिप्रतापाच्च निर्वेदमुपगच्छति॥
निर्वेदादात्मसम्बोधः सम्बोधाच्छास्त्रदर्शनम्।
शास्त्रदर्शनाद्राजंस्तप एवानुपश्यति॥

(महा० शांति प० मोक्ष० 285। 11-12)

राजन्! जिसमें अपना स्नेह हो उसके नाश से, धन नाश से, विपत्ति और रोग की पीड़ा से मनुष्य वैराग्य को प्राप्त होता है। वैराग्य से आत्मज्ञान और आत्मज्ञान से शास्त्र का बोध होता है शास्त्र बोध से तप की ओर चलता है।

वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

एकादश पार्श्व

योग-संस्थान

योग के विघातक दोष–

आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा।
योगदोषान् समुच्छिद्य पञ्चमान् कवयो विदुः।।4।।
कामं क्राधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्।।
क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात्।।।5।।
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।।6।।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनोवाचं च कर्मणा।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 240)

स्वात्मा में रमण करने वाले बुद्धिमान् एवं जागरूक पवित्र कर्मी जन को जानने योग्य है कि वह पाँच दोषों को मूलतः उखाड़ कर शान्ति प्राप्त करे। 'वे पंच योग-दोष हैं' काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न। क्रोध को शमन से, काम भाव को सङ्कल्प त्याग से जीते। धैर्य या धारणा (स्थिर प्रतिज्ञा) से शिश्न और पेट की रक्षा करे अथवा लोभ को जीते और हाथ पाँव को नेत्र से रक्षा करे, नेत्र और कानों की रक्षा मन से करे और मन की कर्म से रक्षा करे।

योग की यज्ञ कर्म से तुलना–

अश्वमेधसहस्त्रस्य वाजपेयशतस्य च।
योगस्य कलया तात न तुल्यं विद्यते फलम्।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 223।9)

सहस्त्रों अश्वमेध यज्ञों, सैकड़ों वाजपेय यज्ञों, का फल योग की कला मात्र के भी तुल्य नहीं है।

योगी ही संसार बन्धन से छूट सकता है–

यथा चानिमिषाः स्थूला जालं छित्त्वा पुनर्जलम्।
प्राप्नुवन्ति तथा योगास्तत्पदं वीतकल्मषाः।।12।।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

तथैव वागुरां छित्त्वा बलवन्तो यथा मृगाः।
प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः॥13॥
लोभजानि तथा राजन् बन्धनानि बलान्विताः।
छित्त्वा योगाः परं मार्गं गच्छन्ति विमलं शिवम्॥14॥
स एव च यदा राजन् वह्निर्जातबलः पुनः।
समीरणगतः क्षिप्रं दहेत् कृत्स्नां महीमपि॥20॥
तद्वज्जातबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः।
अन्तकाल इवादित्यः कृत्स्नं संशोषमज्जगत्॥21॥
तदेव च महास्रोतो विष्टमभयति वारणः।
तद्वद्योगबलं लब्ध्वा व्यूहेत विषयान् बहून्॥23॥
न यमो नान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीम विक्रमः।
ईशते नृपते सर्वे योगस्यामिततेजसः॥25॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 300)

जैसे बड़े मगरमच्छ जाल को काट कर फिर जल में चले जाते हैं उसी प्रकार योगी जन पाप बन्धन से छूटकर उस ब्रह्मपद को प्राप्त हो जाते हैं और जैसे बलवान् सिंह आदि जाङ्गलिक पशु पिंजरे आदि पाशबन्धनों को तोड़ कर सर्व बन्धनों से छूट कर विशाल मार्ग को प्राप्त हो जाते हैं, वैसे ही हे राजन्! बलवान्, आत्मबल वाले योगी जन लोभ वाले बन्धनों को काटकर विमल, ऊँचे कल्याण मार्ग को प्राप्त करते हैं। अग्नि जैसे बढ़ी हुई वायु से भड़काई हुई सारी पृथिवी को भी शीघ्र जला देती है इसी प्रकार आत्मबल वाला योगी दीप्त-तेजस्वी अग्नि की भाँति अन्त करने वाले सूर्य की भाँति जगत् को सुखा देता है। या जैसे स्रोत (जल के सोते) को बाँध या हाथी रोक देता है इसी प्रकार योगी भी योग बल प्राप्त करके कुछ विषयों को रोक देता है। हे राजन्! अतुल बल वाले योगी के ऊपर उसकी भावना (धारणा) पर यम, अन्तक,

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

भयंकर बलवान् मृत्यु भी क्रुद्ध हुआ स्वामित्व नहीं कर सकता।

योग के लाभ–

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नायोगाद् विन्दते सुखम्।
धृतिश्च दुःखत्यागश्चेत्युभयं तु सुखं नृप॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 286।16)

राजन्! अयोगी की बुद्धि ऊँची नहीं होती और न बिना योग के सुख प्राप्त करता है। धृति-स्थिर बुद्धि और दुःख त्याग ये दोनों सुख हैं जो योग से प्राप्त होते हैं।

स्थितप्रज्ञ योगयुक्त मनवाले योगी के लक्षण–

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(महा०, भगवद्गीतापर्व० अ० 26 (3), 55, 58)

हे अर्जुन! जब मनुष्य मनोगत सब कामनाओं को छोड़ देता है और अपने आत्मा में ही स्वात्मा से सन्तुष्ट होता है, वह स्थित प्रज्ञ (युक्त मन वाला) कहलाता है। दुःखों में जिसका मन न घबरा जावे और सुखों में स्पृहारहित हो, रागमय क्रोध से अलग हो वह स्थिर बुद्धि, स्थिर मन वाल मुनि कहा जाता है। जो सर्वत्र स्नेह रहित जन शुभ अशुभ, प्रिय अप्रिय को प्राप्त कर न हर्ष (राग) करता है, न द्वेष करता है उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित होती है। कछुवा जैसे अपने सारे अङ्गों को सङ्कुचित (अन्दर) कर लेता है इसी प्रकार जब जो अपनी इन्द्रियों को

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

विषयों से हटा लेता है उसकी प्रज्ञा स्थित कही जाती है।

तथा–

अप्रमतो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः।
युक्तः सम्यक् तथा योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्॥
स्नेहपूर्णो यथा पात्रे मन आधाय निश्चलम्।
पुरुषो युक्त आरोहेत् सोपानं युक्तमानसः॥
युक्तस्तथायमात्मानं योगः पार्थिव निश्चलम्।
करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शनम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 30 31-33)

जैसे लक्ष्यवेधी धनुष आदि चलाने वाला निर्भ्रान्त सावधान हुआ लक्ष्य को बेधता है उसी प्रकार योगी योगयुक्त हुआ निःसंशय मोक्ष को प्राप्त करता है। जैसे तेल भरे पात्र को ले सीढ़ी पर निश्चल मन को लगाकर चढ़ता है इसी प्रकार योगयुक्त मनुष्य मन को लगाकर, एकाग्र कर योग की भूमि पर चलता है। राजन्! योगयुक्त मन वाला यह योगी अपने आत्मा को निश्चल करता है, एवं अपने आत्मा को सूर्य के समान तेजस्वी बनाता है।

योग धारणा के स्थान–

अवेक्ष्यात्मनि चात्मानं योगी तिष्ठति योऽचलः।
पापं हन्ति पुनीतानां पदमाप्नोति सोऽजरम्॥
नाभ्यां कण्ठे न शीर्षे च हृदि वक्षसि पार्श्वयोः।
दर्शने श्रवणे चापि घ्राणे चामितविक्रम॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 300। 38, 39)

जो योगी नाभि, कण्ठ सिर, हृदय, छाती, पसवाड़ों, आँख, कान, नासिका में धारण करके, अपने आत्मा में परमात्मा को देखकर अचल रहता है वह अपने पाप को नष्ट करता है। पवित्रात्माओं के अक्षय पद को

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

प्राप्त होता है।

आत्मा में परमात्म साक्षात्कार–

विधूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिमान्।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽऽत्मा तथा ऽऽत्मनि॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 206।20)

धूमरहित शुभ्र अग्नि की भाँति किरणों वाले सूर्य के समान एवं आकाश में विद्युद् रूप अग्नि के सदृश परमात्मा स्वात्मा में साक्षात् होता है।

पितामह भीष्म का योग द्वारा प्राण त्याग–

धारयामास चात्मानं धारणासु यथाक्रमम्।
तस्योर्ध्वमगमना प्राणाः सन्निरुद्धा महात्मनः॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 168। 2)

भीष्म पितामह ने अपने आत्मा को योग धारणाओं में क्रमानुसार धारण किया। पुनः उस महात्मा के रोके हुए प्राण बाहिर निकले।

योगी के योग द्वारा प्राण त्याग की विधि–

विहाय सर्वसंकल्पान् बुद्ध्या शारीरमानसान्।
शनैर्निर्वाणमाप्नोति निरिन्धन इवानलः॥
इषीकां च यथा मुञ्जात् कश्चिन्निष्कृष्य दर्शयेत्।
योगी निष्कृष्य चात्मानं तथा पश्यति देहतः॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 19।22)

योगी बुद्धि से शारीरिक और मानसिक सब सङ्कल्पों को त्याग कर इन्धनरहित अग्नि की भाँति धैर्य से देह से आत्म–ज्योति को अलग करता है। यथा जैसे कोई मनुष्य मुञ्ज घास के पौधे से सीख को निकाल कर दिखलाता है उसी प्रकार योगी देह से आत्मा को निकाल कर देखता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैदिक पुस्तकालय

द्वादश पार्श्व

सद्व्रत-सत्यसंकल्प-संस्थान

अहिंसा-मांसवर्जन आदि–

अहिंसा परमो धर्मः।

(महा०, आदि० पौष्य० अ० 11।13)

अहिंसा परम धर्म है।

अहिंसा से दीर्घ आयु–

अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः।

(महा०, अनुशासनप० अ० 163।12)

अहिंसा से दीर्घ आयु प्राप्त होती है ऐसा मनीषी जन कहते हैं।

अपने जैसा दूसरे का जीवन समझ घात न करना–

जीवितं यः स्वयं चेच्छेत् कथं सोन्यं प्रघातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छत् तत् तत्परस्यापि चिन्तयेत्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 259।22)

जो मनुष्य स्वयं जीना चाहता है वह कैसे दूसरे को मारता है? जो-जो अपने लिये चाहे उस-उस को दूसरे के लिये भी सोचना चाहिए।

दया श्रेष्ठ धर्म है–

अनुक्रोशो हि साधूनां महद्धर्मस्य लक्षणम्॥
अनुक्रोशश्च साधूनां सदा प्रीतिं प्रयच्छति॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 5।24)

सज्जनों के लिये दया उत्तम धर्म का चिह्न है, दया

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

सज्जनों के लिये सदा प्रीति प्रदान करती है।

मांस भक्षण वेदविरुद्ध–

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 265।9)

सुरा–मद्य (पान मछली) भक्षण, मधु (मद्य का भेद), मांस, आसव (कच्ची शराब), मांस रस वाले चावल ये धूर्तजनों ने चला दिया है, इनका वेद में विधान नहीं किया है।

न मांस खाना और न मारना चाहिए–

न भक्षयति यो मांसं न हन्यान्न च घातयेत्।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायम्भवोऽब्रवीत्।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 115।12)

जो मनुष्य न मांस खाता हो, न किसी को मारे या घात पहुँचावे वह सब प्राणियों का मित्र है ऐसा स्वयम्भु पुत्र मनु ने कहा है।

अन्य का मांस खाना अपने पुत्र का मांस खाने के समान जानना–

पुत्रमांसोपमं जानन् खादते यो विचक्षणः।
मांसं मोहसमायुक्तः पुरुषः सोऽधमः स्मृतः।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 114।11)

अन्य का मांस खाना पुत्र का मांस खाने के समान जानता हुआ भी जो मोहवश खाता है वह अधम मनुष्य है।

मांस न खाने वाला दानी और तपस्वी पुण्यात्मा है–

सदा यजति सत्रेण सदा दानं प्रयच्छति।
सदा तपस्वी भवति मधुमांसविवर्जनात्।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 115।17)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

मद्य, मांस के त्याग से मनुष्य सदा सत्र से यज्ञ करता है, सदा दान देता है, सदा तपस्वी होता है।

मांस न खाने वाला अश्वमेधयाजी के समान–

यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः।
वर्जयेन्मधुमांसं च सममेतद् युधिष्ठिर॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 115।10)

जो मनुष्य अश्वमेध से मास मास में यत्न से भी यज्ञ करे और मद्य, मांस का सेवन छोड़े तो दोनों समान हैं।

यज्ञ में मांस निषेध–

नायं धर्मकृतो यज्ञो न हिंसा धर्म उच्यते।
आगमेनैव ते यज्ञं कुर्वन्तु यदि चेच्छसि॥
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मस्ते सुमहान् भवेत्।
यज बीजैः सहस्राक्ष त्रिवर्षपरमोषितः॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 91। 15, 16)

ऋषि लोग इन्द्र से कहते हैं कि हे इन्द्र! मांस जिस यज्ञ में डाला जावे वह यज्ञ धर्म से युक्त नहीं है। हिंसा धर्म नहीं कहा जाता। वेद से तुम्हारा यज्ञ ऋत्विक् सम्पादन करने यदि तुम यज्ञ करना चाहते हो। विधिपूर्वक किये यज्ञ से तुम्हें महान् धर्म होगा। अतः मांस से नहीं, किन्तु तीन वर्ष तक सम्पन्न ओषधि बीजों से यज्ञ करो।

आलम्भन का अर्थ स्पर्श न कि मारना काटना–

ततः सहस्रं विप्राणां चतुर्वेदविदां तथा।
गवां सहस्रेणैककं वाचयामास माधवः॥
मङ्गलालम्भनं कृत्वा आत्मानमवलोक्य च।
(मङ्गलानां गवामालम्भनं स्पर्शनम्) (नीलकण्ठः)

(महा०, शान्तिप० राजधर्म अ० 53। 8, 9)

श्रीकृष्ण ने चतुर्वेद वेत्ता सहस्र विद्वानों के निमित्त सहस्र

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

गौओं में से एक-एक देने का वचन किया तथा अपनी ओर देखकर गौओं का मङ्गल-शुभ आलम्भन अर्थात् स्पर्श दान के साथ किया। यहाँ संस्कृत भाष्यकार नीलकण्ठ ने भी आलम्भन का अर्थ स्पर्श किया है। यज्ञ में आलम्भन का अर्थ मारना, हिंसा करने वालों के लिये यह विचारने योग्य है।

यज्ञ में अज शब्द से तात्पर्य ओषधि बीजों से है बकरे से नहीं–

बीजैर्यज्ञेषु मष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि छागो नो हन्तुमर्हति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 340।19-20)

यज्ञों में बीजों-ओषधि बीजों से यजन करना चाहिए यह वैदिक श्रुति, (प्रसिद्धि आज्ञा) है। अज नामक बीज होते हैं अज कथन से बकरा यज्ञ में नहीं मारना चाहिए।

अपने जैसा दूसरे का जीवन समझना मांस खाना पाप है–

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा।
आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिः कृतात्मभिः॥21॥
मृत्युतो भयमस्तीति विदुषां भूतिमिच्छताम्।
किं पुनर्हन्यमानानां तरसा जीवितार्थिनाम्॥22॥
अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते॥25॥
न हि मांसं तृणात् काष्ठदुपलाद्वापि जायते।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद् दोषस्तु भक्षणे॥26॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 114)

जैसे अपने प्राण मनुष्य को अभीष्ट हैं वैसे दूसरे प्राणियों को भी अपने प्राण अभीष्ट हैं ऐसा समझदार आत्मवान् जनों

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

को अपनी तुलना से दूसरों के प्रति मानना चाहिए। ऊँचे जाने वाले विद्वानों को भी मृत्यु से भय है, पुनः सामान्य मारे जाने वाले जीवनेच्छुक प्राणियों को मृत्यु से भय का कहना ही क्या? अहिंसा परम धर्म तथा अहिंसा परम तप, अहिंसा परम सत्य है इससे ही धर्म प्रवृत्त होता है। मांसभोजियों को मांस कोई घास से, काष्ठ से, या पत्थर से नहीं मिलता किन्तु प्राणी को मार कर ही तो मांस मिलता है अतः मांस भक्षण में पाप है।

मांसभक्षी महापातकी–

स्वामांस परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात्स नृशंसतरो नरः।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 116।12)

जो मनुष्य दूसरे प्राणी के मांस से अपने मांस को बढ़ाना चाहता है वह मनुष्य अत्यन्त नीच, अतिपातकी है।

प्रतिहिंसा भी न करने वाला श्रेष्ठ है–

यो नात्युक्तः प्राह रूक्षं प्रियं वा।
यो वा हतो न प्रतिहन्ति धैर्यात्।।
पापं च यो नेच्छतिम् तस्य हन्तुः।
तस्येह देवाः स्पृहयन्ति नित्यम्।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 299।17)

जो दूसरे के द्वारा अपशब्द से अपमानित किया हुआ बदले में रूखा या प्रिय प्रत्युत्तर न दे तथा जो दूसरे द्वारा मारा पीटा हुआ भी धैर्य से प्रतिघात नहीं करता, उस मारने वाले का अहित नहीं चाहता, उसे देव जन चाहते हैं।

वाणी के बाण गहरे चुभते हैं–

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहतेवाक्क्षतम्॥

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कर्णिनाली नाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः।
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहनि।
परस्य ना मर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः॥
(महा०, उद्योगप० अ० 34। 78-80)
(नाकसायका० शान्तिप० मो० अ० 299।9,
'वाक्सायका...रोहते' अनुशासन अ० 109। 32, 33)

बाणों से बिंधा-छिदा एवं कुठार से कटा वन उग जाता है, किन्तु वाणी से ताड़ित बुरा घाव नहीं भरता है। कर्णि नाली नाराच अस्त्र-शस्त्रों को शरीर से निकाल देते हैं किन्तु वाणी का बाण या काँटा नहीं निकाला जा सकता क्योंकि वह हृदय में घुस जाने वाला होता है। वाणी के बाण मुख से निकलते हैं जिनसे आहट (चोट खाया) जन रात-दिन शोच करता है वे दूसरे के अमर्म स्थलों में नहीं गिरते, अपितु मर्म स्थानों में गिरते हैं अतः बुद्धिमान् उन्हें दूसरों के लिये न छोड़े।

सत्य भाषण-

असत्य भाषण का स्थान-

प्राणत्यागेऽनृतं वाच्यमात्मनो वा परस्य च।
(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 34।25)

सदा सत्य भाषण करे परन्तु प्राण त्याग के अवसर पर असत्य भाषण करना चाहिए। वह अवसर अपने प्राणों के जाने का हो या दूसरे के प्राणों के जाने का हो।

स्वीकार करके वचन पूरा करना चाहिए-

यो न दद्यात्प्रतिश्रुत्य स्वल्पं वा यदि वा बहु।
आशास्तस्य हताः सर्वाः क्लीबस्येव प्रजाफलम्॥
(महा०, अनुशासनप० अ० 9।3)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

जो मनुष्य स्वीकार करके थोड़ा बहुत न दे उसकी सब आशाएँ नष्ट हो जावेंगी जैसे नपुंसक जन के सन्तान का अभाव हो जाता है।

अति संग्रह दोष युक्त है–

आवश्यकताएँ बढ़ाना या अति संग्रह करना दुःखदायक है–

विस्तराः क्लेशसंयुक्ताः संक्षेपास्तु सुखावहाः।
परार्थं विस्तराः सर्वे त्यागमात्महितं विदुः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 298। 20)

आवश्यकताएँ बढ़ाना एवं अति संग्रह रखना दुःख से युक्त है। थोड़ी आवश्यकताएँ रखना या अल्प संग्रह रखना सुखदायक है तथा अतिसंग्रह तो दूसरों के लिये हो जाता है। त्याग अपना हित साधक है ऐसा सज्जन जानते हैं।

धन के पीछे पड़ने में दुःख–

ईहा धनस्य न सुखा लब्ध्वा चिन्ता च भूयसी।
लब्धनाशे यथा मृत्युर्लब्धं भवति वा न वा॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 177।26)

धनप्राप्ति के लिये चेष्टा करना सुखदायक नहीं, धन प्राप्त करके बहुत चिन्ता लग जाती है, प्राप्त धन के नाश में मृत्यु सा दुःख और जिस धन प्राप्ति के लिये दौड़ धूप की जाती है वह प्राप्त होता है, नहीं भी होता है।

धनवालों को दुःख–

राजतः सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणमृतामिव॥

(महा०, वनप० अ० 2।38)

धनवालों को राजा शासक–वर्गराज–कर्मचारी से जल से, अग्नि से, चोर से और अपने जन से भी भय ऐसा रहता है जैसा प्राणी को मृत्यु से।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

दान-भोज-यज्ञ—

दान की शुद्धविधि—

शुभेन विधिना लब्धमर्हाय प्रतिपादयेत्।
क्रोधमुत्सृज्य दद्याच्च नानुतप्येन्न कीर्तयेत्॥
(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 309।13)

शुभ विधि से धर्म से प्राप्त धन आदि वस्तु पूजनीय जन को दान दे परन्तु क्रोध को छोड़ कर दे, देकर पश्चात्ताप न करे और देकर चर्चा न करे।

न्याय से प्राप्त का दान श्रेष्ठ है—

न धर्मः प्रीयते तात दानैर्दत्तैर्महाफलैः।
न्यायलब्धैर्यथा सूक्ष्मैः श्रद्धापूर्तैः स तुष्यति॥
(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 90।98)

धर्म महाफल वाले, दिये दानों से प्रसन्न नहीं होता (बढ़ता या प्राप्त नहीं होता) किन्तु जैसे न्याय से प्राप्त थोड़े से भी श्रद्धा से पवित्र दानों से वह सन्तुष्ट होता है, पूर्ण होता है।

दान के पात्र—

अनृशंसः शुचिर्दान्तः सत्यवागार्जवे स्थितः।
योनिकर्मविशुद्धश्च पात्रं स्याद् वेदविद् द्विजः॥
(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 309।14)

दयाशील, पवित्र, जितेन्द्रिय, सत्यभाषी, सरल स्वभाव वाला, कुल और स्वकर्म से पवित्र, वेदवेत्ता ब्राह्मण दान का पात्र है। तथा—

कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः॥
क्रियानियमितान् साधून् पुत्रदारैश्च कर्शितान्।
अयाचमानान् कौन्तेय! सर्वोपायैर्निमन्त्रयेत्।
(महा०, अनुशासनप० अ० 59। 11, 12)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

हे युधिष्ठिर! शरीर के कृश, दुर्बल, निर्बल, विद्यावान्, आजीविकारहित, पीड़ित जन के लिये देकर जो उसकी क्षुधा को मिटावे उसके समान सज्जन अन्य नहीं हो सकता। जिनका धार्मिक क्रियाओं से जीवन नियमित हो उन ऐसे सज्जनों को तथा जो कि पुत्र, स्त्री आदि पारिवारिक जनों के निर्वाह भार से दबे हुए दुर्बल निर्बल हों तथा माँगने में सङ्कोच करने वाले हों समस्त उपायों से भोजन आदि दान के लिये निमन्त्रण दे।

दान किनको देने पर सफल होता है—

अक्रोधना धर्मपराः सत्यनित्या दमे रताः।
तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥
अमानिनः सर्वसहा दृढार्था विजितेन्द्रियाः।
सर्वभूतहिता मैत्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥
अलुब्धा शुचयो वैद्या ह्रीमन्तः सत्यवादिनः।
स्वकर्मनिरता ये च तेभ्यो दत्तं महाफलम्।
साङ्गांश्च चतुरो वेदानधीते यो द्विजर्षभः।
षड्भ्यः प्रवृत्तः कर्मभ्यस्तं पात्रमृषयो विदुः॥
ये त्वेवं गुण जातीयास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्।
सहस्त्रगुणमाप्नोति गुणार्हाय प्रदायकः॥
प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च समन्वितः।
तारयेत् कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजर्षभः॥
गामश्वं वित्तमन्नं वा तद्विधे प्रतिपादयेत्।
द्रव्याणि चान्यानि तथा प्रेत्यभावे न शोचति॥
तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजोत्तमः।
किमङ्ग पुनरेवैते तस्मात् पात्रं समाचरेत्॥
निशम्य च गुणोपतं ब्राह्मणं साधुसम्मतम्।
दूरादानाय्य सत्कृत्य सर्वतश्चापि पूजयेत्॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 22। 33, 41)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

क्रोध न करने वाले, धर्मपरायण, सदा सत्यसेवी, इन्द्रियदमन शील, सज्जन विद्वान् हों उनको दिया हुआ दान महाफल वाला होता है। जो मान-अपमान रहित, सर्वसहनशील, दृढ़ निश्चय वाले जितेन्द्रिय, सर्व प्राणियों के हित साधक, मित्र भाव रखने वाले हैं उनको दिया हुआ दान महाफलदायक है। जो अलोभी पवित्र वैद्य, लज्जाशील, सत्यवादी, अपने कर्म में लगे हुए हैं उनको दिया हुआ दान महाफल वाला है। जो विद्वान अङ्गों सहित चारों वेदों को पढ़ता है षट्कर्मों से प्रवृत्त उसे ऋषि जन 'पात्र' कहते हैं। ऐसे गुणवाले सज्जन हों उनको दान फलदायक है क्योंकि गुणों से योग्य को देने वाला दाता सहस्त्रगुण फल प्राप्त करता है। बुद्धि और ज्ञान से, आचार से शील से युक्त उत्तम विद्वान् एक भी सारे कुल को तार देता है। गौ, घोड़ा, धन, अन्न तथा अन्य द्रव्यों को ऐसे महानुभाव को समर्पित करे तो पुनर्जन्म में दाता शोच नहीं करता है। एक भी ऐसा उत्तम ब्राह्मण समस्त कुल को तार देता है, पुनः ये ऐसे बहुत तो क्या न कर सकेंगे, अतः पात्र को प्राप्त करे, पात्र को दे। गुणों से सम्पन्न सज्जनों में मानित ब्राह्मण को कहीं सुनकर दूर से भी बुलाकर सत्कार करके सर्वतो भाव से उसकी पूजा करे।

दान के अस्थान–

न दद्याद् यशसे दानं, न भयान्नोपकारिणे।
न नृत्यगीतशीलेषु हासकेषु, च धार्मिक॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 36।36)

धार्मिक जन दान यश को लक्ष्य करके न दे, भय से, दवाब से भी न दे और मेरा उपकार करता है या करेगा इस स्वार्थ को सम्मुख रख कर भी न दे तथा नाचने वालों, गाने वालों को एवं हास्य उपहास करने वालों को न दे।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

स्वधर्म से गिरे हुए अधर्मी को देना दोष है–

ये स्वधर्मादपेतेभ्यः प्रयच्छन्त्यल्पबुद्धयः।
शतं वर्षाणि ते प्रेत्य पुरीषं भुञ्जते जनाः॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 26। 29)

जो मन्दबुद्धि जन स्वधर्म अपने कर्तव्य) से च्युत जन हो गए, उनको दान देते हैं, वे मर कर सौ वर्ष तक मल का भोजन करते हैं।[1]

अन्याय से प्राप्त धन का दान फलदायक नहीं होता–

अन्यायोपगतं द्रव्यमभीक्ष्णं यो ह्यपण्डितः।
धर्माभिशङ्की यजते न स धर्मफलं लभेत्॥
धर्मवैतंसिको यस्तु पापात्मा पुरुषाधमः।
ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकविश्वासकारणम्॥
पापेन कर्मणा विप्रो धनं प्राप्य निरङ्कुशः।
रागमोहान्वितः सोऽन्ते कलुषां गतिमश्नुते।
एवं लब्ध्वा धनं मोहाद् यो हि दद्याद् यजते वा।
न तस्य स फलं प्रेत्य भुंक्ते पापधनागमात्॥

(महा०, आश्वमेधिकप० 91। 27–31

जो अबुद्धिमान् अन्याय से प्राप्त धन का पुनः पुनः भी धर्म लाभ के लिये यजन करता है वह धर्म फल को प्राप्त नहीं होता है। जो धर्म का वञ्चक पापी अधम मनुष्य विद्वानों को दान लोक में विश्वास कराने को देता है वह विद्वान् भी निरङ्कुश जन पाप कर्म से धन प्राप्त करके राग, मोह से युक्त जन अन्त में दूषित गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार जो मोह से धन को प्राप्त करके दान दे या यजन करे, वह उस पाप-धन की प्राप्ति से मर कर उसका फल नहीं भोगता है।

1. यह अत्युक्ति है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

ज्ञान दान अमूल्य दान है–

पृथिवीमिमां यद्यपि रत्नपूर्णां देयं त्विदमव्रताय।
जितेन्द्रियायैतदसंशयं ते भवेत्प्रदेयं परमं नरेन्द्र!।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 308।37)

राजन्! यह ज्ञान अव्रती (नियम, धर्मरहित) जन को न देना चाहे वह बदले में रत्नों से पूर्ण इस पृथिवी को भी दे, परन्तु जितेन्द्रिय जन को यह उत्कृष्ट ज्ञान निःसन्देह देना है।

श्राद्ध–ब्रह्म भोज–

भगवंश्चिरेण पात्रमासाद्यते, भवांश्च गुणवानतिथि।
स्तदिच्छे श्राद्धं कर्तुं क्रियतां क्षण इति।।

(महा०, आदिपर्व० पोष्य० अ० 2।144)

पौष्य ने अभ्यागत उत्तङ्क ऋषि से भोजन के लिये प्रार्थना की कि भगवन्! पात्र देर से प्राप्त होता है आप गुणवान् अतिथि हैं श्राद्ध अर्थात् आप को भोजन कराना चाहता हूँ कुछ समय ठहरें।

नकार करने या दान देने में आत्म निरीक्षण प्रमाण–

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति।।

(महा०, अनुशासनप० अ०113।9)

नकार करने या देने में सुख–दुःख और प्रिय–अप्रिय लगने में अपनी उपमा से मनुष्य प्रमाण को प्राप्त करता है अर्थात् मैं इस स्थिति में हूँ मुझे कोई नकार करे या दे तो क्या होगा? तथा यह सुखदायक है या दुःखदायक मुझे प्रिय लगता है या अप्रिय लगता है ऐसा समझ आचरण करे।

श्रेयो वै याचतः पार्थ दानमाहुरयाचते।
अर्हत्तमो वै धृतिमान् कृपणादधृतात्मनः।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 60।2)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

हे युधिष्ठिर! माँगने वाले की अपेक्षा न माँगने वाले अधिकारी को दान देना श्रेष्ठ कहते हैं, कारण कि धैर्यरहित की अपेक्षा धैर्यवान् मनुष्य अधिक पूजनीय है।

किसके निमित्त किस का त्याग करना योग्य है–

[1]त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

(महा०, आदिप० सम्भव प० अ० 115।38)

कुल के हितार्थ एक व्यक्ति को छोड़ना, ग्राम के हितार्थ कुल को छोड़ देना, देश के हितार्थ ग्राम को छोड़ देना, अपने हित के लिये पृथिवी को छोड़ देना श्रेष्ठ है।

यज्ञ–

यज्ञ से देवों का स्वागत करना हितकर है–

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।

(महा०, सभाप० द्यूत० अ० 64।16)

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः॥

(महा०, भीष्मप० भगवद्गीताप० 27 (3), 11,12)

इस यज्ञ से देवों–विद्वानों एवं भौतिक वायु आदि दिव्य पदार्थों को सत्कृत एवं संस्कृत करो तभी वे देव–विद्वान् एवं वायु आदि भौतिक दिव्य पदार्थ तुम्हें भी सत्कृत एवं संस्कृत–गुण युक्त कर सकेंगे। यज्ञ से सत्कृत एवं सत्कृत देव–विद्वान् एवं वायु आदि भौतिक दिव्य पदार्थ तुम्हें इष्ट फल दे सकेंगे, पुनः उनके द्वारा दिये हुए पदार्थों को उन्हें न देकर जो भोगता है वह चोर है।

---

1. 'त्यजेत्कुलार्थे पुरुषम्' (महा०, सभाप० अ०1 64।16)

Scanned with CamScanner

अन्याय से प्राप्त धन द्वारा यज्ञ करने का फल नहीं होता—

अन्यायोपगतं द्रव्यमभीक्ष्णं यो ह्यपण्डितः।
धर्माभिशङ्की यजते न स धर्मफलं लभेत्॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 91)

अन्याय से प्राप्त धन का जो अबुद्धिमान् जन धर्म मान कर यज्ञ करता है वह धर्म फल नहीं प्राप्त करता है।

यज्ञ में पशुहिंसा निषिद्ध है—

आलम्भन शब्द स्पर्श के अर्थ में—

ततः सहस्रं विप्राणां चतुर्वेदविदां तथा।
गवां सहस्रेणैकैकं वाचयामास माधवः॥
मङ्गलालम्भनं कृत्वा आत्मानवलोक्य च।
"मङ्गलानां गवामालम्भनं स्पर्शनम्" नीलकण्ठः

(महा०, शान्तिप० राज० अ० 53। 8–9)

तब चतुर्वेदवेत्ता सहस्र ब्राह्मणों ऋषियों को एक-एक सहस्र गौवें देने का सङ्कल्प श्रीकृष्ण ने किया अपने को देख गौवों का मङ्गलमय आलम्भन अर्थात् स्पर्श किया।

यज्ञ में गौ आदि के सम्बन्ध में जहां आलम्भन शब्द आता है, वहाँ उस का हिंसा ही अर्थ लेना उचित नहीं जब कि आलम्भन शब्द स्पर्श के अर्थ में आता है।

बीजैर्यं यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि च्छागं नो हन्तुमर्हति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 337।1)

ओषधि बीजों से यज्ञ करना चाहिए यही वैदिक प्रसिद्धि है, 'अज' नाम के ओषधि बीज हैं बकरा नहीं मार सकते।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

नायं धर्मकृतो यज्ञो न हिंसा धर्म उच्यते।
आगमेनैव तं यज्ञं कुर्वन्तु यदि चेच्छसि।
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मस्ते सुमहान् भवेत्।
यज बीजैः सहस्त्राक्ष! त्रिवर्षपरमोषितैः।

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 91। 15, 16)

हिंसा वाला यज्ञ धर्मानुकूल नहीं है हिंसा करना धर्म नहीं कहा जाता, वेद से उस यज्ञ को करना चाहिए यदि यज्ञ करना चाहते हो वेद विधि के अनुसार यज्ञ से महान् धर्म प्राप्त होता है अतः हे इन्द्र! तीन वर्ष तक संगृहीत ओषधि बीजों से यज्ञ कर।

तप का लाभ–

यद्दुरापं भवेत् किञ्चित् तत् सर्वं तपसे भवेत्।
ऐश्वर्यमृषयः प्राप्तास्तपसैव न संशयः।।

(महा०, शान्तिप० आपद्धर्म० अ० 161।5)

जो कुछ दुर्लभ हो वह सब तप से प्राप्त हो जाता है, ऋषियों ने तप से ऐश्वर्य प्राप्त किया है इसमें सन्देह नहीं है।

शरीर को सुखाना, पीड़ा पहुंचाना आदि तप नहीं है–

मासार्धमासोपवासाद् यत्तपो मन्यते जनः।
आत्मतन्त्रोपघाती यो न तपस्वी च धर्मवित्।
त्यागस्य चापि सम्पत्तिः शिष्यते तप उत्तमम्।
सदोपवासी च भवेद् ब्रह्मचारी तथैव च।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 93।5)

मास, अर्ध मास उपवास करना जो मनुष्य तप मानता है और अपने शरीर को पीड़ा पहुँचाना तप मानता है वह न तपस्वी न है, धर्मवेत्ता है, किन्तु त्याग की प्राप्ति उत्तम तप है वह सदा उपवासी है जो ब्रह्मचारी है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

मानसिक उद्वेग आदि–

सात्विक आदि वृत्तियाँ–

प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं संशान्तचित्तता।
कथञ्चिदुपपद्यन्ते पुरुषे सात्विका गुणाः।
परिदाहस्तथा शोकः सन्तापोऽपूर्तिरक्षमा।
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यनते हेत्वहेतुभिः॥
अविद्यारागमोहौ च प्रमादः स्तब्धता भयम्।
असमृद्धिस्तथा दैन्यं प्रमोहः स्वप्नतन्द्रिता।
कथञ्चिदुपवर्तन्ते विविधास्तामसाः गुणाः।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 285। 26, 28)

अति हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख, शान्तचित्तता, सात्विक गुण मनुष्य में कभी प्राप्त होते हैं। ईर्ष्या–डाह, शोक, सन्ताप, अतृप्ति, (असन्तोष) असहनशीलता ये रजोगुण के लक्षण अपने–अपने हेतुओं और अहेतुओं से दिखलाई पड़ते हैं। अविद्या, राग, मोह, प्रमाद, स्तब्धता, (जड़ता) भय, दरिद्रता, दीनता, प्रमोह (मूर्च्छा) स्वप्न (निद्रा का आलस्य) आदि विविध तामसिक गुण कभी–कभी वर्तमान होते हैं।

तथा–

आनन्दः प्रीतिरुद्वेगः प्रकाश्यं पुण्यशीलता।
सन्तोषः श्रद्दधानत्वमार्जवं त्यागशीलता॥
ऐश्वर्यं चेति सत्त्वस्य गुणादश निसर्गजाः।
आस्तिक्यमकार्पण्यं सुखदुःखोपसेवनम्॥
भेदः पुरुषता चैव कामक्रोधौ मदस्तथा।
दर्पद्वेषातिवादाश्च नवैते रजसो गुणाः॥
तमोमोहो महामोहस्तामिस्त्राश्चान्धः पञ्चमः।
निद्राप्रमाद आलस्यमित्यष्टौ तमसो गुणाः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 301)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

आनन्द, प्रीति, उद्वेग, प्रेमोद्गार, ज्ञानप्रकाशता, पुण्य-शीलता, सन्तोष, श्रद्धा, ऋजुता, त्यागभाव, ऐश्वर्य ये दश गुण स्वाभाविक सात्विक हैं। आस्तिकता, उदारता, सुख दुःख का सेवन, भेद (फूट), पुरुषार्थ, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष, अधिक बोलना, ये नौ राजसिक गुण हैं। तम, मोह, महामोह, तामिस्र, निद्रा, प्रमाद, आलस्य, ये आठ तामसिक गुण हैं।

वासना का प्रभाव–

यथा चाल्पेन माल्येन वासितं तिलसर्षपम्।
न मुञ्चति स्वकं गन्धं तद्वत्सूक्ष्मस्य दर्शनम्॥
तदेव बहुभिर्माल्यैर्वास्यमानं पुनः पुनः।
विमुञ्चति स्वकं गन्धं माल्यगन्धैश्च तिष्ठति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 280। 14, 15)

जैसे थोड़े फूल से वासित तिल और सरसों अपनी गन्ध नहीं छोड़ते, ऐसे ही थोड़े से दर्शन का प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु जब बहुत फूलों से बार-बार तिल या सरसों वासित किए जावें तो वह अपनी गन्ध को छोड़ देते हैं और फूलों के गन्धों से प्रभावित हो रहते हैं ऐसे ही मन में किसी वस्तु की पुनः पुनः वासनाएँ प्रभाव डालकर ही रहती हैं।

तृष्णा (लालसा)–

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यते।
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका च न जीर्यते॥

(महा० अनुशासनप० अ० 7।24)

जीर्ण (शीर्ण) होते हुए मनुष्य के केश जीर्ण हो जाते हैं, दाँत भी जीर्ण हो जाते हैं, आँख, कान भी जीर्ण हो जाते हैं पर एक तृष्णा ही जीर्ण नहीं होती।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता।
अधर्मबहुला चैव घोरा मायानुबन्धिनी॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥

(महा०, वनप० अरण्य० अ० 2।35, 36 शान्तिप० मोक्ष० अ० 74।55 अ० 276।12)

तृष्णा (लालसा) सब पापों में अधिक पाप रूपा है, नित्य व्याकुल करने वाली समझी गई है, अधर्म से भरी हुई भयङ्कर पाप को साथ लिये हुए है, दुष्ट मति वालों से छूटने वाली नहीं, जो जीर्ण होते हुए भी जीर्ण नहीं होती जो कि प्राणों के अन्त तक रहने वाला रोग है उस तृष्ण को छोड़ने वाले को ही सुख होता है।

भावना जैसी हो वैसा जीवन बना करता है–

वने ग्राम्यसुखाचारो यथा ग्राम्यस्तथैव सः।
ग्रामे वनसुखाचारो यथा वनचरस्तथा॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 309।10)

वन में नागरिक सुख व्यवहार वाला मनुष्य नागरिक जैसा ही है और नगर में रहता हुआ वनवासी की भाँति सुख व्यवहार करने वाला जैसा वनवासी (वानप्रस्थ) है वैसा ही है। (भावना ऊँची होनी चाहिए)।

क्रोध आदि–

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेदुदीर्णांस्तं मन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनिं च॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 299।14)

जो मनुष्य उठे हुए वाणी के वेग, मन के और क्रोध, के वेग, तृष्णा वेग, बुभुक्षा वेग और उपस्थेन्द्रिय वेग को स्ववश कर ले उसे ब्राह्मण और मुनि मानता हूँ।

Scanned with CamScanner

शोक–

बुद्धिमन्तं कृतप्रज्ञं शुश्रूषुमनसूयकम्।
दान्तं जितेन्द्रियं चापि शोको न स्पृशते नरम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 174। 81)

बुद्धिमान्, विवेकवान्, सेवाशील, अनिन्दक, दमनशील, जितेन्द्रिय को शोक स्पर्श नहीं करता है।

सावधानता (प्रज्ञा) से शोक, भय आदि के पार होना–

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशान्ति न पण्डितम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 330।2)

सहस्रों शोक स्थान, सैकड़ों भयस्थान आए दिन मूढ़ को प्राप्त होते हैं, बुद्धिमान् को नहीं।

ततो दुःखोदकं घोरं चिन्ताशोकमहाह्रदम्।
व्याधिमृत्युमहाग्राहं महाभयमहोरगम्॥
तमः कूर्मः रजो मीनं प्रज्ञया सन्तरन्त्युत।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 33।64)

दुःख जिसमें जल है ऐसे घोर चिन्ता शोक रूप महान् नद जो रोग मृत्यु रूप महा ग्राह वाले तथा भारी भय रूप सर्प वाले, तमोगुण रूप कछुआ और रजोगुण रूप जिस में मछली है उसे बुद्धि से तैर लेते हैं।

वैदिक पुस्तकालय

(पृष्ठ नं० 98) में श्लोक नं० 33–38 तथा उनका अर्थ भी इस प्रसंग में देखें)।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैदिक पुस्तकालय

त्रयोदश पार्श्व

सुख-दुःख-अभ्युदय-संस्थान

सुख–

सन्तोष महान् सुख–

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
सन्तोष सुखस्यैते नार्हतः षोडषीं कलाम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 276।6)

संसार में जो भोग सुख है और जो परलोक का दिव्य महासुख है ये दोनों सन्तोष रूप सुख की सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकते।

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 330।30)

अपने आत्मा में रमण करने वाला किसी भी अपेक्षा न रखने वाला, मांस भोजन रहित, अपने भरोसे रहने वाला जन सुखी होता है।

सच्चा सुख–

तथा–

असङ्गः श्रेयसो मूलं ज्ञानं ज्ञानगतिः परा।
चीर्णतपो न प्रणश्येद् वापः क्षेत्रे न नश्यति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 298।3)

असङ्ग (निर्लेपता-लगाव न रखना) कल्याण का मूल है, परा अर्थात् श्रेयः सम्बन्धी ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान

Scanned with CamScanner

गति ही ज्ञान है और आचरित तप, इन तीनों में से प्रत्येक ऐसे ही नष्ट न होने वाली वस्तु है, जैसे खेत में डाला बीज नष्ट नहीं होता कभी न कभी और कुछ न कुछ तो उगता ही है।

लौकिक सुख या उसके आधार–

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽअर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥82॥
आरोग्यमानृशंस्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीरुवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥89॥

(महा०, उद्योगप० प्रजा० अ०33)

धन प्राप्ति, सदा रोग रहितता, प्रिय पत्नी, प्रिय बोलने वाली, आज्ञाकारी पुत्र, काम आने वाली विद्या, हे राजन्! ये छः मनुष्य लोक के सुख हैं। तथा–

अरोगता, प्रेमभाव, स्वदेश वास, सत्पुरुषों के साथ मेल मिलाप, स्वाधार आजीविका, अभय निवास हे राजन्! ये छः मनुष्य लोक के सुख हैं।

सुख और दुःख के कारण–

नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 75।35)

राग के समान दुःख नहीं, त्याग के समान सुख नहीं।

परिग्रह (विस्तार) आवश्यकताओं की वृद्धि दुःख दायक–

विस्तराः क्लेशसंयुक्तः संक्षेपास्तु सुखावहाः।
परार्थं विस्तराः सर्वे त्यागमात्महितं विदुः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 298।20)

वस्तुओं का संग्रह परिग्रह या आवश्यकताएँ बढ़ाए रखना दुःख से युक्त है संक्षेप (मर्यादित) संग्रह या आवश्यकताएँ रखना सुखदायक है, संग्रह परिग्रह तो

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

दूसरों के ही काम आते हैं त्याग अपने हित को साधना है ऐसा विद्वान् जानते हैं।

राग एवं नष्ट के शोच में दुःख–

मृतं वा यदि नष्टं योऽतीतमनुशोचति।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते॥9॥
प्राक् सम्प्रयोगाद् भूतानां नास्ति दुःखं परायणम्।
विप्रयोगात्तु सर्वस्य न शोचेत् प्रकृतिस्थितः॥27॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 330)

मरे जन आदि को या नष्ट हुई वस्तु को शोचता है वह दुःख से दुःख को प्राप्त करता है और इस लोक–परलोक सम्बन्धी दोनों अनर्थों को प्राप्त होता है या नष्ट के दुःख एवं पुनः शोच के दुःख को प्राप्त होता है। किसी बन्धु या वस्तु के सम्बन्ध या सम्पर्क से पूर्व मर जाने या नष्ट हो जाने से दुःख नहीं होता किन्तु उसके वियोग से सबको दुःख होता है अतः स्वभाव से शान्त व्यक्ति इसमें शोच नहीं करता है।

दुःख को पार करने वाले जन–

नित्यं शमपरा ये च तथा ये चानसूयकाः।
नित्यस्वाध्यायिनो ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 31।29)

जो जन सदा शम, मन की शान्ति रखने वाले शान्त तथा निन्दा न करने वाले हैं, नित्य स्वाध्याय करने वाले हैं, वे दुःखों के पार हो जाते हैं।

मानस दुःख एवं शरीर दुःख से बचने का उपाय–

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 204।3)

बुद्धि से मानसिक दुःख को, रोग को और शरीर के रोग

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

को औषधों से नष्ट करे।

(दुःखों से बचने, पार होने के साधन देखो पृष्ठ पुण्य जन प्रकरण)।

अभ्युदय-उन्नति–

अनालस्यता, कार्यतत्परता अर्थ साधने वाली हैं–

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न क्लीबा नाभिमानिनः।
न च लोकापवाद्भीता न वै शश्वत्प्रतीक्षिणः॥

(महा०, शांतिप० आपद्धर्म अ० 140।23)

आलसी, नपुंसक, अभिमानी, लोकवाद के भय से डरने वाले, सदा प्रतीक्षा करने वाले (दीर्घसूत्री) जन अर्थ (धन) आदि, को प्राप्त नहीं कर सकते।

कल का कार्य आज करना कार्य में तत्पर रहना–

श्वःकार्यमद्य कुर्वीतं पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम्॥
अद्यैव कुरु तच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगान्महान्।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 277।13,14)

कल का कार्य आज करे, सायं का कार्य प्रातः करे क्योंकि मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती है किया की नहीं किया। जो उत्तम कर्म हैं उन्हें आज ही कर, महान् काल तुझे अतिक्रमण न कर पावे। क्योंकि कौन जानता है आज किसकी मृत्यु हो जायेगी।

सहायवान् और स्थिर मन वाला सफलता प्राप्त करता है–

व्यवसायं समाश्रित्य सहायवान् योऽधिगच्छति।
न तस्य कश्चिदारम्भः कदाचिदवसीदति॥

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

अद्वैधमनसं युक्तशरं धीरं विपश्चितम्।
न श्रीः सन्त्यजते नित्यमादित्यमिव रश्मयः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 298।42, 43)

जो मनुष्य सहायवान् होकर निश्चय के अनुसार कार्य पर आरूढ़ हो जाता है उसका कोई आरम्भ किया कार्य कभी नष्ट नहीं होता है। द्विधामन न रखने वाला निश्चित मति जन शर जिसने मुक्त कर लिया है ऐसे धीर विद्वान् को श्री, लक्ष्मी (धन, सम्पत्ति) की समृद्धि ऋद्धि-सिद्धि ऐसे नहीं त्यागती है जैसे सूर्य को सूर्य-किरणें नहीं त्यागती हैं।

त्रिवर्ग संग्रह आदि–

अनुग्रहं च मित्राणाममित्राणां च निग्रहम्।
संग्रहं च त्रिवर्गस्य श्रेय आहुर्मनीषिणः॥15॥
निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्भिश्च समुदाचारः श्रेय एतदसंशयम्॥16॥
मार्दवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम्।
वाक् चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतदसंशयम्॥17॥
नक्तंचर्यां दिवास्वप्नमालस्यं मैथुनं मदम्।
अतियोगमयोगं च श्रेयोऽर्थी परित्यजेत्॥24॥

(महा०, शान्ति प० मोक्ष० अ० 287)

मित्रों को प्रेम, दया शत्रुओं का स्ववश होना। त्रिवर्ग-धर्म अर्थ, काम का संग्रह इसे मनीषी जन श्रेय कहते हैं। पाप कर्म से निवृत्ति निरन्तर पुण्यशील बने रहना सत्पुरुषों का समागम, व्यवहार, निःसंशय यह श्रेय है। सब प्राणियों के निमित्त मृदु भाव रखना, व्यवहारों में सरलता और वाणी मधुर बोलना निःसन्देह श्रेय है। रात्रि में काम काज करना या भटकना और दिन में सोना आलस्य, मैथुन, मादक वस्तु

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

सेवन वस्तुओं का अति सेवन या न सेवन करना श्रेय ये सब काम चाहने वाला छोड़ दे।

उद्धार एवं सुधार–

मोहाद् धर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते।
मनः समाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम्।
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते।
तथा यथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 112)

जो मनुष्य अज्ञान से अधर्म करके पुनः पश्चात्ताप करता है मन को एकाग्र करे एवं स्वाधीन किए हुए दुष्कर्म का सेवन न करे। जैसे–जैसे उसका मन पाप कर्म की निन्दा करता है वैसे–वैसे उस अधर्म से उसका शरीर छूटता जाता है।

जैसी करनी वैसी भरनी, कारण के अनुसार कार्य–

सुक्षेत्राच्च सुबीजाच्च पुण्यो भवति सम्भवः।
अतोऽन्यतरतो हीनादवरो नाम जायते।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 296।4)

अच्छे खेत से और अच्छे बीज से उत्तम उत्पत्ति होती है इससे अतिरिक्त हीन खेत और बीज से निकृष्ट, अधम उत्पत्ति होती है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

चतुर्दश पार्श्व

ऐतिहासिक विशिष्ट वृत्त-संस्थान

राजा जनक–

राजा जनक पञ्चशिख संन्यासी का शिष्य था–

पराशरसगोत्रस्य वृद्धस्य सुमहात्मनः।
भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं शिष्यं परमसम्मतः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 320।24)

सुलभा संन्यासिनी से जनक अपना परिचय दे रहे हैं कि पराशर गोत्र वाले वृद्ध उत्तम संन्यासी पञ्चशिख का मैं माना हुआ शिष्य हूँ।

राजा जनक का विदेहत्व-निर्ममत्व समभाव–

यश्च मे दक्षिणं बाहुं चन्दनेन समुक्षयेत्।
सव्यं वास्यापि यस्तक्षेत् समावेतावुभौ मम॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 320।36)

सुलभा संन्यासिनी से जनक कहते हैं कि जो मेरे दक्षिण बाहु को चन्दन जल से सिञ्चित करे और जो इसके वाम बाहु को काटे ये दोनों मेरे लिये समान हैं।

राजा जनक मोक्ष शास्त्र वेद तथा राजनीति में निष्णात एवं संयमी थे–

स वेदे मोक्षशास्त्रे च स्वे च शास्त्रे कृतश्रमः।
इन्द्रियाणि समाधाय शशास वसुधामिमाम्॥
तस्य वेदविदः प्राज्ञाः श्रुत्वा तां साधुवृत्तताम्।
लोकेषु स्पृहयन्त्यन्ये पुरुषाः पुरुषेश्वर॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 320।6,7)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

राजा जनक वेद मोक्ष शास्त्र और राजनीति में अभ्यस्त थे–

उन्होंने इन्द्रियों को संयमित करके इस पृथिवी का शासन किया। उसकी साधुवृत्तता को सुनकर अन्य वेदवेत्ता विद्वान् जन स्पृहा (इच्छा) करते थे।

याज्ञवल्क्य ऋषि युधिष्ठिर के अश्वमेध में–

अहं पैलोऽथ कौन्तेय! याज्ञवल्क्यस्तथैव च।
विधानं च यथाकालं तत्कर्तारो न संशयः॥3॥
याज्ञवल्क्य शिष्यश्च कुशलो यज्ञकर्मणि।
प्रायात् पार्थेन सहितः शान्त्यर्थं वेदपारगः॥18॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 73)

व्यासजी कहते हैं कि मैं, पैल ऋषि और याज्ञवल्क्य ऋषि उस विधान (अश्वमेध यज्ञ) के विधि क्रम को निःसंशय करेंगे। याज्ञवल्क्य ऋषि का शिष्य यज्ञ कर्म में कुशल है वह वेदवेत्ता आ गया है।

व्यास ऋषि–

व्यासमुनि के पाँच शिष्य थे–

सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव पैलश्च सुदृढव्रतः।
अहं चतुर्थः शिष्यो वै पञ्चमश्च शुकः स्मृतः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 340। 19–20)

वैशम्पायन कहते हैं कि सुमन्तु, जैमिनि, पैल, मैं (वैशम्पायन), और पाँचवाँ शुक (व्यासजी का पुत्र) व्यासजी के शिष्य हैं।

भीष्म पितामह–

भीष्म पितामह ने शरशय्या पर पड़े हुए लटके हुए शिर के लिये अर्जुन से उपधान माँगा जो कि तीन बाण अर्जुन ने शिर में लगा कर शिर ऊँचा कर दिया और जल भी माँगा था

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

तो पर्जन्य अस्त्र से पृथिवी का जल निकाल कर पिलाया। यह लम्बा वृत्तान्त (महाभारत भीष्मवधप० अ० 121।34) में दिया है।

भीष्म पितामह का शरशय्या पर उत्तरायण में प्राणान्त दिवस–

दिष्ट्या प्राप्तोऽसि कौन्तेय! सहामत्यो युधिष्ठिर!।
परिवृत्तो हि भगवन् सहस्त्रांशुर्दिवाकरः॥
अष्टपञ्चाशतं रात्रयः शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा॥
माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर!
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 167। 23-28)

भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं–"हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! तुम अपने मन्त्रियों सहित अकस्मात् पहुँचे हो, सहस्त्ररश्मि वाला सूर्य लौट गया वह दक्षिणायन से उत्तरायण को हो गया। आज मुझे तीक्ष्ण बाणों पर सोते हुए अट्ठावन रात्रियाँ सौ वर्ष के समान चली गईं। यह सौम्य माघ मास आ गया है यह तीन भाग शेष पक्ष शुक्ल पक्ष होने को है।

श्रीकृष्ण–

कृष्ण का न्याय पक्ष या सद् वर्तन–

अकस्माद् द्वेष्टि वै राजन् जन्मप्रभृति पाण्डवान्।
प्रियानुवर्तिनो भ्रातृन् सर्वैः समुदितान् गुणैः॥
अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते।
धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान् किं वक्तुमर्हति॥
यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः॥

(महा०, उद्योगप० अ० 91।26-28)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कृष्णजी दुर्योधन की सभा में उसे कहते हैं कि हे दुर्योधन! आप हितकारी गुण सम्पन्न पाण्डव भाइयों के प्रति अकारण द्वेष करते हो। किसी से अकारण द्वेष करना उचित नहीं है। धर्म में वर्तमान पाण्डव हैं, कौन उन्हें क्या कह सकता है। जो उनसे द्वेष करता है वह मेरे प्रति द्वेष करता है। जो उनके अनुकूल है वह मेरे अनुकूल है। धर्माचरण करने वाले पाण्डवों के साथ मुझे एकात्म्य (एक रूप में हुआ) जानो।

ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत्॥
अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु तद्वेत्थ पुरुषर्षभ!॥
अहं चतुर्थः शिष्यो वै पञ्चमश्च शुकः स्मृतः॥

(महा०, भगवद्यानप० अ० 95।9, 10)

हे धृतराष्ट्र श्रेष्ठ जन! तेरे वे दुर्योधन आदि पुत्र, धर्म और अर्थ की उपेक्षा करके घातकों की भाँति व्यवहार करते हैं। वे अशिष्ट, मर्यादाहीन तथा लोभवश नष्ट बुद्धि वाले जन अपने मुख्य बन्धुओं पाण्डवों के सम्बन्ध में व्यवहार कर रहे हैं, ऐसा तुम जानो।

कृष्ण ने अपने राज्य में सुरापान का निषेध किया–

अघोषयंश्च नगरे वचनाद्वाहुकस्य ते।
जनार्दनस्य रामस्य बभ्रोश्चैव महात्मनः॥
अद्यप्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धककुलेष्विह।
सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः॥
यश्च नो विदितं कुर्यात्पेयं कश्चिन्नरः क्वचित्।
जीवन् स शूलमारोहेत् स्वयं कृत्वा सबान्धवः॥

(महा०, मौसलप० अ० 1।28, 30)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

घोषणा करने वालों ने आहुक कृष्ण बलराम बभ्रु के आदेश से नगर में घोषणा की सूचना प्रसारित की कि आज से लेकर सब वृष्ण्यन्धक कुलों में सुरा-मद्य (पक्की, कच्ची शराब) सब नगरवासियों को न करनी होगी और जो कोई मनुष्य कहीं भी इनका पान करे ऐसा हमने जान लिया तो वह मनुष्य स्वयं ऐसा करके बान्धवों सहित जीता हुआ शूली पर चढ़ेगा।

कृष्ण और कर्ण का संवाद–

कृष्णजी का कथन–

कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते।
वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः॥
सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः।
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि॥
मया सार्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः।
अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात्॥
पादौ तव गृहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः।

(महा०, उद्योगप० भगवद्यानप० अ० 140।8-13)

कृष्णजी कर्ण से कहते हैं–हे कर्ण! कन्या-अविवाहित से जो कानीन बालक उत्पन्न हो तथा विवाह समय गर्भ में हो वह उस बालक का पिता विवाह करने वाला होता है ऐसा शास्त्र वेत्ता जन कहते हैं। वह तुम कर्ण इस प्रकार उत्पन्न हुए हो, तुम धर्म से पाण्डु पुत्र हो। अतः आओ, तुम धर्म शास्त्रों के नियन्त्रण से नियम से राजा होगे। यहाँ से मेरे साथ प्राप्त हुए तुमको पाण्डव आज युधिष्ठिर से पूर्व उत्पन्न हुआ कुन्ती पुत्र जान लेंगे, पाँचों भाई तुम्हारे चरण छूएँगे।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कर्ण का कथन–

कुन्त्या त्वहमयोकीर्णो यथा न कुशलं तथा।
सूतो हि मामधिरथो दृष्टैवाभ्यानयद् गृहान्॥
राधायाश्चैव मां प्रादात् सौर्हादान्मधुसूदन्!।
न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः॥12॥
हर्षाद् भयाद् वा गोविन्द मिथ्याकर्तुं तदुत्सहे।
धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात्।
मया त्रयोदशसमा भुक्तं राज्यमकण्टकम्॥15॥
बधाद्बन्धाद् भयाद्वापि लोभाद्वापि जनार्दन।
अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः॥17॥
मन्त्रस्य नियमं कुर्यास्त्वमत्र मधुसूदन।
एतदत्र हितं मन्ये सर्वं यादवनन्दन॥20॥
यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति॥

(महा०, उद्योगप० भगवद्यान० अ० 141)

हे कृष्ण! कुन्ती ने मुझे अलग कर दिया, फेंक दिया जिससे मैं बच भी न सकूँ, रथस्थ सूत मुझे देख कर अपने घर लाया। दया भाव से राधा को मुझे दे दिया एवं मैं धृतराष्ट्र के यहाँ पला। सकल पृथिवी या सुवर्णराशियों के बदले में भी हर्ष से, भय से मैं इस उपकार को मिथ्या नहीं कर सकता। हे कृष्ण! धृतराष्ट्र के कुल में दुर्योधन के साथ मैंने तेरह वर्ष अकंटक राज्य को भोगा है। वध से, बन्धन से, भय से, लोभ से भी बुद्धिमान् दुर्योधन के पक्ष का उलटा नहीं कर सकता। हे कृष्ण! तुम इस गुप्त रहस्य को नियन्त्रित रख, प्रकट न करना। यह यहाँ सब हितकर समझता हूँ। यदि धर्मात्मा, जितेन्द्रिय युधिष्ठिर राजा मुझे कुन्ती का प्रथमज, ज्येष्ठ पुत्र जान लेता है तो

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैदिक पुस्तकालय

वह राज्य ग्रहण न करेगा।

कृष्ण की पत्नी सत्यभामा और रुक्मिणी थी न कि राधा–

तथैव सत्यभामाऽपि द्रौपदीं परिषस्वजे।
पाण्डवानां प्रियां भार्यां कृष्णास्य महिषी प्रिया॥

(महा०, वनप० मार्कण्डेय सभा० अ० 183।11)

इसी प्रकार कृष्ण की प्रिया महिषी–पत्नी सत्यभामा ने भी पाण्डवों की प्रिया भार्या द्रौपदी को आलिङ्गन किया।

अथाब्रवीत् सत्यभामा कृष्णास्य महिषी प्रिया।

(महा०, वनप० द्रौपदीसत्यभामा० अ० 233।3)

कृष्ण की प्रिय पत्नी सत्यभामा ने कहा।

वैदेह्यां च यथा रामो रुक्मिण्यां च जनार्दनः।

(महा०, उद्योगप० भगवद्यान० अ० 118।17)

जैसे सीता के निमित्त राम वैसे रुक्मिणी के निमित्त कृष्ण है।

कृष्ण के अवतारवाद और भक्तिवाद का कारण–

महाभारतान्तर्गत भगवद्गीता प्रकरण में कृष्णजी की ओर से कुछ ऐसे वचन दिए गए जिन से कृष्णजी ईश्वर हैं, ईश्वर का अवतार हैं तथा उनकी भक्ति करना सर्वोत्तम धर्म है। इन दोनों बातों का कारण क्या है हम यहाँ कहेंगे प्रथम भक्ति मार्ग का स्पष्टीकरण करते हैं–

भक्तिमार्ग–

भक्तिमार्ग–भक्ति का मार्ग, 'भक्ति' शब्द सेवा-अर्थ वाले 'भज्' धातु से बना है 'भज् सेवायाम्' (भ्वादि०) अतः भक्ति का अर्थ हुआ सेवा और भक्तिमार्ग हुआ सेवा का मार्ग। सेवा कहते हैं–किसी की आवश्यक वस्तुएँ पण्यवीथी (बाजार) से ला देना, उसके यहाँ झाड़ू लगा देना, उसे स्नान

Scanned with CamScanner

कराना, उसके अङ्ग दबाना, वस्त्र पहिनाना, रोगी हो जाने पर परिचर्या करना, विशेष रोगी हो जाने पर मल, मूत्र तक उठाना आदि भाँति-भाँति के उपायों से भजनीय (स्वामी) को प्रसन्न करना रिझाना भक्तिमार्ग है। भक्तिमार्ग का प्रचलन अध्यात्म क्षेत्र में अवतारवाद को मान कर हुआ और वह लोक में बढ़ा। मूर्तिपूजा लीला (रामलीला, रासलीला) सखी भाव आदि के रूप में आया। जिन को ईश्वर का अवतार माना उनके जीवन-काल में उनकी प्रत्येक प्रकार से सेवा करना तथा सर्वतोभाव से उनकी आज्ञा मानना पुनः देहान्त पर उनकी मूर्ति बना, मूर्ति को नहलाना, वस्त्र पहिनाना, चन्द तिलक लगाना, फूल माला पहिनाना, शृङ्गार करना, पालने में झुलाना, चामरी करना, रिझाना, भोग लगाना आदि भक्ति चल पड़ी तथा लीला जैसा कि भक्तिवाद के साम्प्रदायिक ग्रन्थों में कहा है **"प्रेममयी भक्तिः कृष्णगोपिकानामिव"** और सखि भाव आदि में बढ़ी। कृष्ण की गोपियों की भक्ति प्रेममयी भक्ति करना।

भक्तिमार्ग का प्रारम्भ भवगद्गीता से हुआ क्योंकि भक्तिमार्ग अवतारवाद पर निर्भर है और गीता में अवतारवाद दर्शाया गया है, अब भक्तिमार्ग और अवतारवाद के कुछ वचन गीता में आए हैं, यहाँ प्रदर्शित करते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।।

(महा०, भगवद्गीता अ० 4।7)

जब जब धर्म का लोप होता है तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ अपने को जन्म देता हूँ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(भगवद्गीता० 1।26)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कृष्णजी कहते हैं—"पत्ता, फूल, फल, जल को जो मेरे लिये भक्ति से देता है उस भक्ति से भेंट किए हुए को मैं यत्न से खाता हूँ।"

फल का खाना तो किसी के लिये सङ्गत है परन्तु पत्ते और फूल का खाना सङ्गत नहीं। यह तो भक्तिमार्ग (में चढ़ावे) की वस्तु हुई। ईश्वर को तो इनमें से किसी की भी आवश्यकता नहीं किन्तु कृष्ण आदि को ईश्वर का अवतार मान कर उन्हें जल, फल, फूल, पत्ते, की भेंट करना हुआ (पुनः उनके देहान्त के पश्चात् उनकी मूर्ति बना उस पर उक्त वस्तुएँ चढ़ाने आदि का भक्तिमार्ग चल पड़ा)।

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(भगवद्गीता अ० 9।30)

कृष्णजी कहते हैं—"चाहे बहुत दुराचारी भी हो परन्तु यदि वह अन्य को छोड़कर मुझे अपना कर मेरी भक्ति करता है तो उसे साधु सज्जन ही मानना चाहिए।"

यहाँ भक्तिवाद की अतिस्तुति एवं अयुक्त स्तुति की है इस में दुराचार भी अगण्य ठहराया अपितु उसको प्रोत्साहन दिया गया है। भगवद्गीता में यह कृष्णजी की उक्ति निम्न साम्प्रदायिक नवीन उपनिषद्-कथन के समान है—

दुराचाररतो वाऽपि मन्नामभजनात् कपे।
सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम्॥
काश्यां च ब्रह्मनालेऽस्मिन् मृतो मत्तारमाप्नुयात्॥

(मुक्तिकोपनिषद् 1)

इस साम्प्रदायिक कथन में दर्शाया गया है कि हनुमान् से राम कहते हैं—"हे हनुमान, दुराचार में रत हुआ मनुष्य भी मेरा नाम भजने से सालोक्य मुक्ति को प्राप्त होता है, अन्य

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

लोक–लोकान्तर में नहीं जन्मता और काशी में ब्रह्म नाल स्थान में मरा हुआ मेरी शरण पाता है।"

यहाँ भी दुराचार का पोषण किया गया है। कहाँ ये दुराचार के परिपोषार्थ कृष्ण और राम के मुख से कहलाए गये साम्प्रदायिक विचार और कहाँ अध्यात्मविद्या के कठोपनिषद् ग्रन्थ के दुराचार विरोधी सदाचार प्रचार के विचार–

नाविरतो दुश्चरितात्...प्राज्ञानेनैमाप्नुयात्।

(कठोपनिषद् 1।2।33)

दुराचार से जो अलग नहीं हुआ ऐसा मनुष्य इस परमात्मा को पा नहीं सकता।

ऊपर राम के मुख से जो दुराचार का पोषण और सदाचार की अवहेलना दिखलाई गई है वाल्मीकि रामायण में ऐसा कहीं भी हुनमान् को राम ने नहीं कहा है। अतः जैसे यह कथन पश्चात् साम्प्रदायिक लोगों का गढ़ा हुआ है यह सिद्ध है। इसी प्रकार भगवद्गीता में भी उक्त कृष्णजी द्वारा आचार की अवहेलना साम्प्रदायिक कथन के पश्चात् का जानना चाहिए।

उक्त भक्तिवाद् का प्रदर्शन करते हुए और भी साम्प्रदायिक पुट देखिये निम्न वचन में–

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(भगवद्गीता, अ० 4।31)

कृष्णजी कहते हैं–"हे अर्जुन! मुझे आश्रित करके जो पाप योनियाँ–स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र हैं वे भी उत्तम गति को प्राप्त होते हैं।"

यहाँ भक्तिवाद की अति प्रशंसा करते हुए स्त्रियों, वैश्यों, शूद्रों को पापयोनियाँ कह डालना घोर साम्प्रदायिकता है।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

साम्प्रदायिक विचार-धारा में **"स्त्रीशूदौ नाधीयातामिति श्रुतेः"** 'स्त्री और शूद्र न पढ़ें' यह तो था ही, परन्तु गीता के उक्त वचन में स्त्री शूद्र को ही नहीं वैश्य को भी पापयोनि कह डाला। पुनः यह साम्प्रदायिक भक्तिवाद जिस अवतारवाद पर आश्रित है उसका भी प्रदर्शन गीता के वचनों से प्रदर्शित करते हैं—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो लोकान् समार्हतुमिह प्रवृत्तः। ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥ तस्मादुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्। मयैव ते निहिताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥

(भगवद्गीता अ० 11।32, 33)

कृष्णजी कहते हैं—"मैं लोकों का क्षय करने वाला काल हूँ, लोको का संहार करने को मैं यहाँ प्रवृत्त हुआ हूँ, ये जो प्रतिपक्ष सेनाओं में योद्धा उपस्थित हैं अर्जुन! ये बिना तुम्हारे अन्य कोई न रहेंगे इसलिये तुम उठो, यश प्राप्त करो, शत्रुओं को जीत कर समृद्ध राज्य को भोगो। मैंने ये सब प्रथम ही मार दिए हैं तुम निमित्त मात्र हो।"

उक्त वचन में कृष्णजी अर्जुन को युद्धार्थ तैयार हो जाने के लिये अपनी बात मनवाने के लिये अपने को ईश्वर का अवतार प्रदर्शित कर रहे हैं।

तथा—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्योऽहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥

(भगवद्गीता अ० 11।53, 54)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

कृष्णजी अर्जुन को कहते हैं—"हे अर्जुन! मैं वेदों के पढ़ने, जानने से, तप से, दान से और यज्ञ से देखा या जाना जाता नहीं हूँ, जैसा कि मुझे तुमने देखा है किन्तु एक मेरी अनन्य भक्ति से ही इस प्रकार यथार्थ जानने, देखने और प्रवेश करने योग्य है।"

यहाँ कृष्णजी ने अपने को ईश्वर या ईश्वर का अवतार प्रदर्शित करते हुए अपने दर्शन ज्ञान एवं प्राप्ति में वेद, तप, दान, यज्ञ को भक्ति से निकृष्ट बतला दिया, भक्ति से ही अपने को प्राप्य कहा है।

तथा—

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।

(भगवद्गीता अ० 11।17)

"पुण्य-अपुण्य या धर्म-अधर्म को छोड़ कर जो भक्ति करने वाला है वह मुझे प्रिय है।"

अधर्म को तो छोड़ना चाहिए पर धर्म को भी छोड़कर भक्ति करना भक्ति की अति प्रशंसा और अयुक्त प्रशंसा है।

और भी—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यस्यसंशयः।

(भगवद्गीता अ० 18।65, 66, 68)

कृष्णजी अर्जुन को कहते हैं—"मेरे में मन रखो, मेरे भक्त हो, मेरा यज्ञ करो, मेरी ओर झुक, मुझे ही प्राप्त होगे तुम्हारे लिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम मेरे प्रिय हो। सब धर्मों को छोड़कर एक मेरी ही शरण लो। मैं तुम्हें सब पापों से छुड़ा

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

दूँगा, शोक न करो, मेरे में ऊँची भक्ति करके निःसंशय मुझे ही प्राप्त होगे।"

इस वचन में कृष्णजी ने अपने को (ईश्वर का अवतार) प्रकट कर अर्जुन को सब धर्मों से छुड़ा कर अपनी ओर झुकाने अपनी बात को स्वीकार करवाने को बाधित किया है।

उपर्युक्त कृष्णजी के समस्त वचनों में कृष्णजी का अपने को ईश्वर या ईश्वर का अवतार कहने और अपनी भक्ति करवाने अपनी बात मनवाने का उद्देश्य अर्जुन को युद्ध लड़ने को तैयार करने, खड़े हो जाने का था जिस में वह सफल हुए। अर्जुन ने युद्ध में लड़ना स्वीकार कर लिया। अर्जुन अन्त में कहते हैं—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(भगवद्गीता, 18।73)

"हे कृष्ण! तुम्हारी कृपा से मेरा मोह (अज्ञान) नष्ट हो गया, स्मृति (प्राप्त की) समझ आ गई सन्देहरहित हो गया हूँ, तुम्हारे वचन का पालन करूँगा अर्थात् लड़ूँगा।"

यही तो कृष्णजी चाहते थे कि अर्जुन उनकी बात मान ले, युद्ध में लड़ने को तैयार हो जावे इसी के लिये कृष्णजी ने यह सब कुछ अपने को ईश्वर बता अपनी भक्ति कराने का प्रपंच रचा। अर्जुन हठी था, मान नहीं रहा था अतएव कृष्णजी को ऐसा करना पड़ा।

ईश्वर का अवतार लेना (कथन करना) वेद विरुद्ध है, अतः अवैदिक है। क्योंकि वेद में कहा "अज एकपात्" (यजु० 34।53) "स पर्यगाच्छुक्रमकायम्" (यजु० 40।5) ईश्वर जन्म नहीं लेता, वह शरीर धारण नहीं करता।

जबकि अवतारवाद अवैदिक है तब अवतारवाद पर

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

निर्भर उपर्युक्त भक्तिवाद या भक्तिमार्ग भी अवैदिक हुआ। जैसा कि हम प्रथम कह आए हैं जब से लोगों ने ईश्वर को अवतार मानना आरम्भ किया तब से भक्तिमार्ग चल पड़ा, सो यह भगवद्गीता के वचनों से स्पष्ट हो गया। उक्त भक्तिमार्ग साम्प्रदायिक है और अवतारवाद भी साम्प्रदायिक तथा अवैदिक है यह स्पष्ट हो गया।

(प्रश्न) उक्त अवतारवाद और भक्तिमार्ग अवैदिक हैं साम्प्रदायिक हैं यह तो ठीक है परन्तु भगवद्गीता में कृष्ण जी के द्वारा इनका प्रतिपादन क्यों किया गया?

(उत्तर) इसके सम्बन्ध में दो बातें हो सकती हैं जिनमें—

एक तो यह कि भगवद्गीता महाभारत का अङ्ग है और महाभारत में बाद में बहुत कुछ बढ़ाया गया, सो भगवद्गीता के अन्दर भी प्रक्षेप किया जाना सम्भव है। कृष्णजी ने अर्जुन को युद्ध में लड़ने के लिये तैयार हो जाने को किसी अन्य ढंग से, कुछ वचन कहे हों इसके पश्चात् साम्प्रदायिक लोगों ने साम्प्रदायिक भावनाओं के विचार से अवतारवाद और भक्तिमार्ग में डाल दिए हों क्योंकि अन्य जीव साम्प्रदायिक ग्रन्थों में उक्त अवतारवाद और भक्तिमार्ग को दिया हुआ है।

दूसरी बात यह हो सकती है कि यदि कृष्णजी के ही उक्त वचन ही अपने को ईश्वर का अवतार बतला अपनी भक्ति कराने रूप भक्तिमार्ग का आदेश अर्जुन को युद्ध में लड़ने के लिये तैयार हो जाने को दिया हो तो ये दोनों बातें अवतार और भक्तिमार्ग उसी समय के लिये राजनैतिक क्षेत्र सम्बन्धी हैं, धार्मिक क्षेत्र की नहीं, जैसे वर्तमान समय में महात्मा गाँधी के अहिंसा और सत्य के बाद से ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष लेने के लिये भारतीय जनता द्वारा आचरण करने

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

को उसी समय के लिये राजनैतिक क्षेत्र सम्बन्धी थे, सदा के लिये नहीं। अतः कृष्णजी के द्वारा अवतारवाद और भक्तिमार्ग का प्रतिपादन अर्जुन को युद्ध में लड़ने के लिये तैयार करने को राजनैतिक वस्तु है। कृष्णजी ने अन्य भी ऐसी चालें चली हैं, द्रोणाचार्य के वधार्थ धर्म का उल्लंघन करने का आदेश दिया ही था—

आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः।

(महा०, द्रोणप० द्रोणवध० अ० 190।12)

द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा मर गया, ऐसा कृष्णजी ने झूठ बुलवाया, क्योंकि अपने पुत्र अश्वत्थामा को मरा हुआ समझ द्रोणाचार्य हाथ से शस्त्र डाल देगा। पुनः उसे मार देना। यह सब कुछ अधर्माचरण का आदेश कृष्णजी द्वारा दिया जाना राजनैतिक चाल ही थी।

तथा—

नैष शक्यः कदाचित्तु हन्तुं धर्मेण पार्थिव!।
ते भीष्मप्रमुखाः सर्वे महेष्वासा महारथाः॥
मयाऽनेकैरुपायैस्तु मायायोगेन चासकृत्।
हतास्ते सर्व एवाजौ भवतां हितमिच्छता॥
यदि नैवंविधं जातु कुर्यां जिह्ममहं रणे।
कुतो वो विजयो भूयः कुतो राज्यं कुतो धनम्॥
तथैवायं गदापाणिर्धार्तराष्ट्रोऽतिरथा भुवि।
न शक्यो धर्मतो हन्तुं लोकपालैरपि स्वयम्॥

(महा०, शल्य० गदाप० अ० 61। 62–64, 66)

कृष्णजी पाण्डवों से कहते हैं "यह भीष्म पितामह धर्म से युद्ध करते हुए नहीं मारा जा सकता अथवा वे सब भीष्म पितामह आदि शस्त्रधारी महयोद्धा धर्म से नहीं मारे जा सकते। मैंने अनेक उपायों से मायायोग से आप लोगों के

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

हित को चाहते हुए (छल प्रयोग) से पुनः-पुनः इन्हें युद्ध में आहत किया। यदि मैं इस प्रकार युद्ध में कदाचित् छल न करूँ तो फिर तुम्हारा विजय कैसे हो, कैसे राज्य, कैसे धन। इसी प्रकार यह गदाधारी दुर्योधन पृथिवी पर महायोद्धा है जो कि स्वयं लोकपालों से भी धर्म से मारा नहीं जा सकता।"

कृष्णजी के उपर्युक्त कथन से भी स्पष्ट है कि कृष्ण ने पाण्डवों को अधर्म से युद्ध करने को प्रेरित किया और स्वयं भी छल से युद्ध में काम लिया है यह दर्शाया है, अतः कृष्णजी के द्वारा अर्जुन को युद्ध में लड़ने को तैयार करने के लिये अपने को ईश्वर एवं ईश्वर का अवतार कह कर अपनी ओर आकर्षित करने, अपना भक्त बनाने अपनी भक्ति कराने का प्रपञ्च रचना उसी समय के लिये राजनैतिक क्षेत्र की वस्तु है, धार्मिक क्षेत्र की नहीं। अस्तु।

सम्राट् भरत–

भरतश्चक्रवर्ती यस्यान्ववाये भरताः सर्व एव।

(महा०, अनुशासनप० अ० 76।26)

भरत चक्रवर्ती राजा हुए जिसके वंश में सब भरत ही प्रसिद्ध हैं।

धृतराष्ट्र का बल–

आयसी प्रतिमा येन भीमसेनस्य सा पुरा।
चूर्णीकृता बलवता सौबलामाश्रिता स्त्रियम्।।

(महा०, आश्रमवासिकप० अ० 3।64)

धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे पर बलवान् बहुत थे भीमसेन से चिढ़े हुए थे। भीमसेन की लोह की मूर्ति बना पास रखकर कहा कि यह भीमसेन है, उस "भीमसेन" की लोहमूर्ति को जिसने बलवान् (धृतराष्ट्र) ने बगल में दबाकर चूर्ण कर दिया तोड़-फोड़ दिया।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

युधिष्ठिर की धर्मपरायणता–

बड़ों का मान–

मया चैव भवद्भिश्च मान्य एष नराधिपः।
निदेशे धृतराष्ट्रस्य यस्तिष्ठति स मे सुहृत्॥
विपरीतश्च मे शत्रुर्नियम्यश्च भवेन्नरः॥

(महा०, आश्रमवासिकप० अ० 2।4,5)

युधिष्ठिर अपने सब बन्धु-बान्धवों और अनुचरों को वनवास में धृतराष्ट्र की सेवा शुश्रूषा करते और अनुमति में रहने का आदेश देते हैं–"यह महाराज धृतराष्ट्र मेरे द्वारा और आप लोगों के द्वारा मान्य हैं जो इनकी आज्ञा, अनुमति में रहेगा वह मेरा मित्र और जो विपरीत वह मेरा शुत्र होगा।"

भक्त-त्याग–

अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र शक्यं कर्तुं दुष्करमेतदार्य।
मा मे श्रिया सङ्गमनं तयास्तु यस्याः कृते भक्तजनं त्यजेयम्॥
भीतिप्रदानं शरणागतस्य स्त्रिया वधो ब्राह्मणस्वापहारः।
मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शक्र भक्तत्यागश्चैव समो मतो मे॥

(महा०, महाप्रस्थानिकप० अ० 3।9,16)

स्वर्गारोहण के अवसर पर युधिष्ठिर के साथ कुत्ता भी था। इन्द्र ने स्वर्ग में कुत्ते को त्याग देने के लिये युधिष्ठिर को कहा। युधिष्ठिर उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। वह इन्द्र को कहते हैं–"हे दूरदर्शी! आप यह ऐसा अनार्य कर्म पाप आर्य के द्वारा किया जाना दुष्कर है, अर्थात् मैं नहीं कर सकूँगा। हाँ! भले ही उस लक्ष्मी से मेरा सङ्ग न हो, मुझे न प्राप्त हो यह अभीष्ट है जिस के कारण भक्त जन को छोड़ूँ। शरणागत को भय देना, स्त्रीवध, ब्राह्मण के धन का अपहरण करना, मित्रद्रोह करना, ये चारों और भक्त का त्याग समान हैं, यह मेरा मत है।"

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

प्रबन्ध सम्बन्ध का व्यवहार कल्पित करना होगा। प्रथम उस पक्ष को रखेंगे जो लोकप्रवाद प्रचलित है कि द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की धर्मपत्नी थी, को देखें–

पाण्डवेभ्यो हि पाञ्चाल्यां द्रौपद्यां पञ्च जज्ञिरे।
कुमारा रूपसम्पन्नाः सर्वशास्त्रविशारदाः॥
प्रतिविन्ध्यो युधिष्ठिरात्सुतसोमो वृकोदरात्।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः।
तथैव सहदेवाच्च श्रुतसेनः प्रतापवान्॥

(महा०, आदिप० पौष्य० अ० 63।122,123)

पाण्डवों से पाञ्चाली द्रौपदी में पाँच कुमार सम्पन्न सर्वशास्त्र विशारद उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकीर्ति, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतसेन उत्पन्न हुआ।

पाञ्चाल्यपि तु पञ्चभ्यः पतिभ्यः शुभलक्षणा।
लेभे पञ्च वीराञ् छ्रेष्ठान् पञ्चाचलानिव॥
युधिष्ठिरात्प्रतिविंध्य सुतसोमं वृकोदरात्।
अर्जुनाच्छ्रुतकर्माणं[1] शतानीकं च नाकुलिम्॥
सहदेवाच्छ्रुतसेनमेतान् पञ्च महारथान्।
पाञ्चाली सुषुवे वीरानाविस्वानविर्तिर्यथा॥

(महा०, आदिप० हरणाहरण० अ० 223।78, 80)

शुभलक्षण वाली पाञ्चाली (द्रौपदी) ने पाँच पतियों श्रेष्ठ पर्वत के समान से पाँच वीर पुत्र प्राप्त किए। युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल

1. पूर्वभाग में अर्जुन से श्रुतकीर्ति पुत्र और उत्तरभाग में श्रुतकर्मा कहा है, यह भेद है।

न्याय–

पानीयार्थे पराक्रान्ता यत्र ते भ्रातरो हताः।
भीमार्जुनौ परित्यज्य यत्र त्वं भ्रातरावुभौ।
मात्रोः साम्यमभीप्सन् वै नकुलं जीवमिच्छति।।

(महा०, महाप्रस्थानिकप० अ० 3।20)

यक्ष के अधिकृत तड़ाग में जल पीने के लिये गए हुए युधिष्ठिर के भीम आदि चारों भाई यक्ष द्वारा (मरे) मूर्च्छित कर दिए गए थे। पुनः युधिष्ठिर गए तो यक्ष ने एक भाई को जीवित करने का वचन दिया था। युधिष्ठिर ने नकुल को जीवित करने के लिये कहा। युधिष्ठिर के इस भाव की प्रशंसा यक्ष करता है–"जल के लिये दौड़ कर आए हुए तुम्हारे भाई जहाँ मरे हुए पड़े हैं उनमें से तुम भीम अर्जुन आदि (अपनी माता कुन्ती से उत्पन्न हुए) भाइयों को छोड़कर कुन्ती और माद्री दोनों माता की समता को चाहते हुए नकुल को जीवित चाहते है। यह तुम्हारा न्याय निष्पक्षता और ऊँचा धर्म है।"

द्रौपदी युधिष्ठिर ही की धर्मपत्नी थी–

द्रौपदी पांच पाण्डवों की धर्मपत्नी थी ऐसा लोक में प्रवाद है और लोकप्रवाद का आधार भी है, वह आधार महाभारत में दिए वचन हैं परन्तु महाभारत में ऐसे भी वचन हैं जिन से यह सिद्ध होता है कि द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की धर्मपत्नी नहीं किन्तु युधिष्ठिर की धर्मपत्नी थी। अब इस प्रकार परस्पर के विरोध में यही कहना पड़ेगा कि एक स्थल का वर्णन मुख्य है दूसरे स्थल का गौण है, जो गौण ठहरेगा उसके सम्बन्ध में दो धारणाएँ हो सकेंगी एक तो यह कि महाभारत में बहुत कुछ बढ़ा हुआ भाग है, किसी ने बढ़ा दिया। दूसरा यह कि यहाँ कुछ लोकाचार या पारिवारिक

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

प्रबन्ध सम्बन्ध का व्यवहार कल्पित करना होगा। प्रथम उस पक्ष को रखेंगे जो लोकप्रवाद प्रचलित है कि द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की धर्मपत्नी थी, को देखें–

पाण्डवेभ्यो हि पाञ्चाल्यां द्रौपद्यां पञ्च जज्ञिरे।
कुमारा रूपसम्पन्नाः सर्वशास्त्रविशारदाः॥
प्रतिविन्ध्यो युधिष्ठिरात्सुतसोमो वृकोदरात्।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः।
तथैव सहदेवाच्च श्रुतसेनः प्रतापवान्॥

(महा०, आदिप० पौष्य० अ० 63।122,123)

पाण्डवों से पाञ्चाली द्रौपदी में पाँच कुमार सम्पन्न सर्वशास्त्र विशारद उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकीर्ति, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतसेन उत्पन्न हुआ।

पाञ्चाल्यपि तु पञ्चभ्यः पतिभ्यः शुभलक्षणा।
लेभे पञ्च वीराञ् छ्रेष्ठान् पञ्चाचलानिव॥
युधिष्ठिरात्प्रतिविंध्य सुतसोमं वृकोदरात्।
अर्जुनाच्छ्रुतकर्माणं[1] शतानीकं च नाकुलिम्॥
सहदेवाच्छ्रुतसेनमेतान् पञ्च महारथान्।
पाञ्चाली सुषुवे वीरानादित्यानदितिर्यथा॥

(महा०, आदिप० हरणाहरण० अ० 223।78, 80)

शुभलक्षण वाली पाञ्चाली (द्रौपदी) ने पाँच पतियों श्रेष्ठ पर्वत के समान से पाँच वीर पुत्र प्राप्त किए। युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल

1. पूर्ववर्ग में अर्जुन से श्रुतकीर्ति पुत्र और उत्तरवर्ग में श्रुतकर्मा कहा है, यह भेद है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

से शतानीक, और सहदेव से श्रुतसेन को पञ्चाली ने उत्पन्न किया जैसे अदिति ने आदित्यों को उत्पन्न किया।

ऊपर के दोनों स्थलों में द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की धर्मपत्नी थी। इस प्रवाद के पक्ष में दो बातें हैं—एक तो प्रत्येक पाण्डव से प्रत्येक अलग-अलग पुत्र उत्पन्न हुआ गिनाया गया, दूसरी बात दूसरे स्थल में पाँचों पाण्डवों को द्रौपदी के पति कहा गया है। दूसरा पक्ष महाभारत में यह मिलता है कि द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की धर्मपत्नी नहीं थी। केवल युधिष्ठिर की धर्मपत्नी थी। अब उसे प्रस्तुत करते हैं—

जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम्।

(महा०, सभाप० द्यूत प० अ० 67।29)

"दुःशासन ने नरेन्द्र पत्नी द्रौपदी को केशों द्वारा खींचा।"

इस वचन में द्रौपदी को 'नरेन्द्र पत्नी' कहा है पाण्डव पत्नी नहीं कहा राजा को नरेन्द्र कहते हैं और राजा पाँचों पाण्डवों में युधिष्ठिर था, इस प्रकार द्रौपदी युधिष्ठिर की ही पत्नी हुई।

तामिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम्।

(महा०, सभाप० द्यूतप० अ० 69।11)

उस समान रंगवाली, धर्मराज की पत्नी को।

यहाँ धर्मराज की भार्या कहा है और धर्मराज युधिष्ठिर को कहते हैं, सदृशवर्ण (समानवर्णवाली) ऐसा कहा अर्थात् धर्मराज युधिष्ठिर जैसे रंगवाली, द्रौपदी थी। विवाह में पति पत्नी के गुण और रंग की समानता होना वैवाहिक या शास्त्रीय मर्यादा है जैसा कि रामायण में राम की सीता से, और लक्ष्मण का उर्मिला से गुणकर्म और रूप समानता

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

बतलाई गई है।

सदृश्यो धर्मसम्बन्धः सदृशी रूपसम्पदा।
राम लक्ष्मणयो राजन् सीतयोर्मिलया सह।

(वाल्मिकि रा० बालकाण्ड० 72।3)

यहाँ वाल्मीकि रामायण में रात का सीता के साथ और लक्ष्मण उर्मिला के साथ, रूप की समानता दिखलाई है, इस प्रकार युधिष्ठिर की रूप समानता द्रौपदी से भी कही गई है जो द्रौपदी को युधिष्ठिर की ही धर्मपत्नी थी, सिद्ध करती हैं।

अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम्।
शान्ति लब्ध्वाऽस्मि...॥

(महा०, विराट्प० कीचकवध० अ० 22।80)

विराट् नगर में विराट् का सेनापति कीचक द्रौपदी को पतित करना चाहता था, उसे ताड़ित करता हुआ भीम कह रहा है कि आज मैं भ्राता की पत्नी (युधिष्ठिर) की पत्नी को अपहरण करने वाले (कीचक) को मार अनृण होकर शान्ति को प्राप्त हुआ हूँ।

यहाँ भीम ने द्रौपदी को पाण्डव पत्नी नहीं कहा, न अपनी पत्नी कहा किन्तु युधिष्ठिर की पत्नी कहा है। इससे भी द्रौपदी युधिष्ठिर की पत्नी थी यह सिद्ध होता है।

विवेचन–

द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की धर्मपत्नी थी इस प्रवाद के पक्ष में महाभारत में आए उक्त प्रथम पक्ष की द्योतक दो बातें हैं, एक तो पाण्डवों से अलग-अलग पुत्रों का द्रौपदी में उत्पन्न होना, दूसरी बात पाँचों पांडवों को द्रौपदी के पति कहा है। दूसरे पक्ष अर्थात् द्रौपदी युधिष्ठिर ही की धर्मपत्नी थी, पाँचों पाण्डवों की नहीं इसकी द्योतक तीन बातें हैं, एक

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

यह कि द्रौपदी को 'नरेन्द्र-पत्नी', राजा की धर्मपत्नी, दूसरी धर्मराज की पत्नी और उसके समान रंगवाली, तीसरी के मुख से कहा गया 'द्रौपदी भ्राता की पत्नी युधिष्ठिर की पत्नी' है। दोनों पक्षों में से एक सत्य है। प्रथम पक्ष अर्थात् द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी थी इसकी पोषक दो बातें आईं और दूसरे पक्ष अर्थात् द्रौपदी केवल युधिष्ठिर की पत्नी थी इसकी पोषक तीन बातें आई हैं। पोषक संख्या की अधिकता से दूसरा पक्ष अर्थात् द्रौपदी केवल युधिष्ठिर की पत्नी थी यह पक्ष बलवान् हुआ तथा इस पक्ष में दी गई बातें मुख्य स्थान रखती हैं। उनमें लक्षणों का अवतार नहीं है।

जब कि द्यूत के अवसर पर पाँचों पाण्डव विराजमान हैं, तब द्रौपदी को पाण्डव पत्नी न कहकर धर्मराज (युधिष्ठिर) की पत्नी कहना और उसके समान रंगवाली वैवाहिक मर्यादा को भी साथ दर्शाना तथा पुनः उसे नरेन्द्र (राजा) की पत्नी कहना उसका युधिष्ठिर ही की पत्नी होना सिद्ध करता है और भीम के मुख से द्रौपदी को भ्राता (युधिष्ठिर) की पत्नी कहा जाना अपने को और अन्य पाण्डवों को भी पतित्व से अलग रखना तो द्रौपदी को युधिष्ठिर ही की पत्नी सिद्ध करने में सन्देह का अवसर न रखता हुआ सुतरां साधक है।

इन कथनों में गौण विचारधारा का समावेश या गौणी लक्षण का अवसर नहीं है। पुनः पूर्वपक्ष अर्थात् द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी थी। दूसरी साधक दो बातें जो आई हैं कि पाँचों पाण्डव द्रौपदी के पति थे और उन से एक-एक पुत्र द्रौपदी के हुआ। इन दोनों बातों में गौणी लक्षण का अवकाश है। वह इस प्रकार कि जैसे 'पितृ' शब्द पिता (बाप) के अर्थ में है, परन्तु 'पितरौ' पिता और माता के अर्थ में तथा

Scanned with CamScanner

'पितरः' बाप, चाचा, दादा माता, चाची, दादी आदि सबके लिए प्रयुक्त हो जाता है, तथा जैसे एक कुलपति की अपनी स्त्री, छोटे भाई की स्त्री, पुत्रों की स्त्रियाँ साथ हों तो वह दूसरों को कहता है कि ये सब हमारी या अपनी स्त्रियाँ, बहुएँ या औरतें हैं, ऐसा कह देता है जबकि एक पुरुष इन सारी स्त्रियों को अपनी स्त्रियाँ, बहुएँ, औरतें गौणी लक्षण से कह सकता है तब एक स्त्री अपने विवाहित पति के सब भाइयों को गृहपति होने की गौणी लक्षण से पति कह सकती है कि यह सब हमारे पति लोग हैं। अस्तु, दूसरी बात एक-एक से एक-एक पुत्र द्रौपदी के हुआ। यहाँ भी गौणी लक्षण का अवकाश है।

लोक में देखते हैं कि घर में दो भाई होते हैं, एक बड़े भाई की स्त्री होती है। उसके दो पुत्र हैं छोटे को छोटा भाई अपना पुत्र बनाता (मान लेता) है, स्त्री भी छोटे पुत्र को छोटे भाई का वह कह देती है, यह तुम्हारा है। इसी प्रकार यहाँ द्रौपदी के पाँच पुत्र हुए। पाँचों को पाँचों पाण्डवों ने अपना-अपना अलग-अलग पुत्र मान लिया एवं पाँचों का अलग-अलग बँटवारा कर दिया, पाँचों पाण्डवों के पुत्र बना दिए। यह एक पारिवारिक स्नेह और लोक-व्यवहार की बात है।

महाभारत के वचनों में जो पंचमी विभक्ति से प्रकट किया है, उसमें 'प्रति' शब्द अन्तर्हित है जो कि प्रतिनिधि के अर्थ में होता है प्रतिनिधि अर्थवाले 'प्रति' शब्द को लक्ष्य कर पंचमी विभक्ति सार्थक है, 'अर्जुनात्' से तात्पर्य 'अर्जुनात्प्रति' समझा जा सकता है अर्थात् अर्जुन का प्रतिनिधि अर्जुन के निमित्त श्रुतकीर्ति पुत्र द्रौपदी ने उत्पन्न किया इत्यादि। अतः पूर्वपक्ष में लक्षण का अवकाश होने से उत्तर पक्ष के मुख्य होने से द्रौपदी युधिष्ठिर की ही धर्मपत्नी थी।

Scanned with CamScanner

या इस उत्तर पक्षी के बलवान् होने से पूर्वपक्ष विषयक विचार 'प्रक्षिप्त' पश्चात् के बढ़ाए हुए भी कहे जा सकते हैं।

पाण्डवों के सभाभवन का दृश्य—

कृतो बिन्दुसरोरत्नैर्मयेन स्फाटिकच्छटाम्।
अपश्यं नलिनीं पूर्णामुदकस्येव भारत॥25॥
वस्त्रमुत्कर्षति मयि प्राहसत्स वृकोदरः॥26॥
पुनश्च तादृशीमेव वापीं जलजशालिनीम्।
मत्वा शिलासमां तोये पतितोऽस्मि नराधिप।।29॥
तत्र मां प्राहसत्कृष्णः पार्थेन सह सुस्वरम्।
द्रौपदी च सह स्त्रीभिर्व्यथयन्ती मनो मम॥30॥
क्लिन्नवस्त्रस्य तु जले किंकरा राजनोदिताः।
ददुर्वासांसि मेऽन्यानि तच्च दुःखं पर मम॥31॥
प्रलम्भं च शृणुष्वान्यद्वदतो मे नराधिप।
अद्वारेण विनिर्गच्छन्द्वारसंस्थानरूपिणा।
अभिहत्य शिलां भूयो ललाटेनास्मि विक्षतः।।32॥
तत्र मां यमजौ दूरादालोक्याभिहतं तदा।
बाहुभिः परिगृह्णीतां शोचन्तौ सहितावुभौ॥33॥
उवाच सहदेवस्तु तत्र मां विस्मयन्निव।
इदं द्वारमितो गच्छ राजन्निति पुनः पुनः॥34॥
भीमसेनेन तत्रोक्तो धृतराष्ट्रात्मजेति।
सम्बोध्य प्रहसित्वा च इतो द्वारं नराधिप।।35॥
नामधेयानि रत्नानां पुरस्तान्न श्रुतानि मे।
यानि दृष्टानि मे तस्यां मनस्तपति तच्च मे॥36॥

(महा०, सभाप० अ० 50)

दुर्योधन पाण्डवों के सभाभवन को देखने गए थे, वह धृतराष्ट्र से वहाँ का वर्णन करते हैं—

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

वैदिक पुस्तकालय

मय के द्वारा बिन्दुसर के रत्नों से जड़ित स्फाटिकमणि काँच की बनी छतवाली, जल से भरी जैसी पुष्करिणी को मैंने देखा और मैंने वस्त्र ऊपर उठाये तो भीम ने प्रहास किया। फिर वैसी ही जल भरी वापी को शिला की भाँति जानकर मैं उसके जल में गिर पड़ा तब मुझ पर कृष्ण, अर्जुन सहित ऊँचे से हँस पड़े, द्रौपदी ने भी स्त्रियों सहित मुझे व्यथित किया। जल में भीगे वस्त्र वाले को मुझे युधिष्ठिर की प्रेरणा से नौकरों ने वस्त्र दिए यह मेरे दुःख की बात है। और मेरी वञ्चना (धोखा खाने की बात) सुन कि द्वार जैसे दीखे हुए अद्वार से निकलते हुए मेरे शिला के टकराने से ललाट मैं चोट खा बैठा, वहाँ मुझे नकुल सहदेव ने भुजाओं से पकड़ कर सँभाला और विस्मय करते हुए सहदेव ने कहा कि यह द्वार है, यहाँ से जावें। भीमसेन ने हँसकर कहा कि हे धृतराष्ट्र पुत्र! इधर द्वार है। हे राजन्! जो मैंने वहाँ सभा भवन में रत्न जड़े देखे हैं उनके नाम मैंने कभी नहीं सुने इससे मेरा मन दुःखता है।

पाण्डवों के वनप्रस्थान के पश्चात् राज्य का उत्तराधिकारी–

ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन् धर्मकाम्यया।
राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः॥
अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितम्।
दुःखार्तश्चाब्रवीद्राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः।

(महा०, महाप्रास्थानिकप० अ० 1।6।7)

पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता राजा युधिष्ठिर ने धर्म कामना को लक्ष्य कर वनप्रस्थान करते हुए उस अवसर पर युयुत्सु (धृतराष्ट्र के वैश्या पुत्र) को बुलाकर उस वैश्या पुत्र को राज्य सौंप दिया और स्वराज्य में परीक्षित (अर्जुन के

Scanned with CamScanner

पौत्र-अभिमन्यु के पुत्र ज्येष्ठ जनमेजय के पुत्र) को राजा अभिषिक्त कर दुःखित हो, सुभद्रा (कृष्ण की बहिन और अर्जुन की पत्नी अभिमन्यु की माता परीक्षित की दादी) को बोला।

पाण्डवों की हिमालय यात्रा–

भ्रातरः पञ्च कृष्णा च षष्ठी श्वा चैव सप्तमः।

(महा०, महाप्रास्थानिकप० अ० 1।24)

ततस्ते नियतात्मानः उदीचीं दिशमास्थिताः।
ददृशुर्योगयुक्तश्च हिमवन्तं महागिरिम्।

(महा०, महाप्रास्थानिकप० 2।1)

पाँचों भाई पाण्डव, छठी द्रौपदी और सातवाँ कुत्ता घर से साथ चल पड़े। वे संयमशील पुनः उत्तर दिशा को प्राप्त हुए, योग में संलग्न हुए वहाँ उन महानुभावों ने हिमवान्–हिमालय महापर्वत को देखा।

स्वर्ग-त्रिविष्टप (तिब्बत) में पाण्डवों की यात्रा का अन्त–

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्वपितामहाः

(महा०, स्वर्गारोहणप० अ० 1।1)

जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा–"मेरे पूर्वपिता महाजनों ने स्वर्ग–त्रिविष्टप (तिब्बत) पहुँचकर क्या किया?"

पाण्डव जन तिब्बत में पहुँचकर एक–एक करके हिम (बर्फ) में गिरते, गलते, मरते गए, केवल युधिष्ठिर और एक कुत्ता ही शेष रहे थे। युधिष्ठिर अन्त में योग–मृत्यु को प्राप्त हो गए।

।। इति ।।

वैदिक पुस्तकालय
वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैदिक
साहित्य
pdf मे प्राप्त
करने के लिए
टेलीग्राम
एप्लिकेशन
मे वैदिक
पुस्तकालय
या
vaidicbooks
सर्च करें

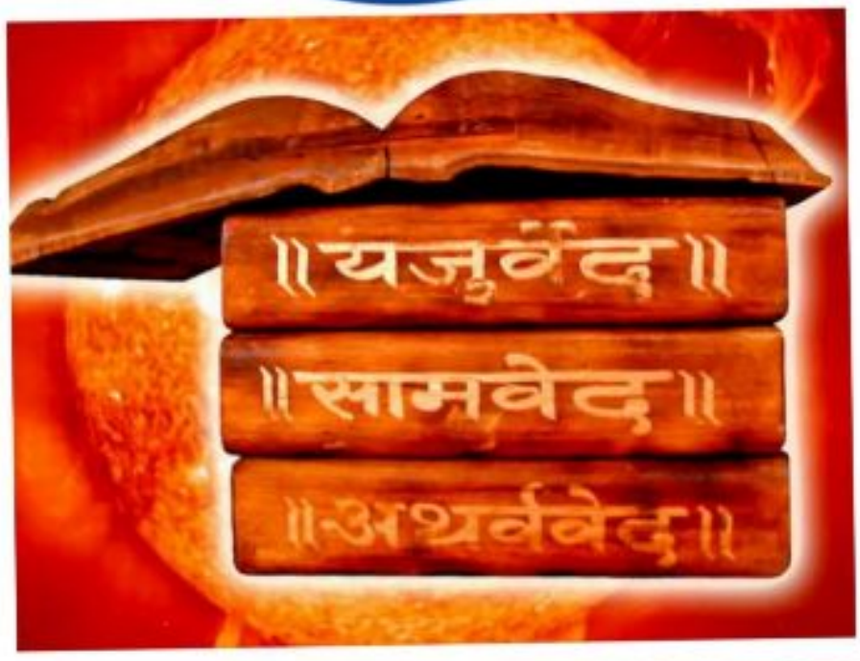

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner